

पद्य-रत्न-माला

सङ्कलनकर्ता और संपादक—

महामहोपाध्याय, रायबहादुर

गौरीशङ्कर-हीराचन्द श्रोभा



Published by

The Educational Publishers, Ltd, Ajmer

under the authority of the

Board of High School and Intermediate Education

Rajputana (including Ajmer-Merwara)

Central India and Gwalior Ajmer

1935

वक्तव्य

सन् १९३४ ई० के जनवरी मास में राजपूताना, मध्यभारत और ग्वालियर के हाई-स्कूल तथा इटरमाजिण्ट शिक्षा-बोर्ड के मन्त्री महोदय ने बोर्ड के प्रस्ताव के अनुसार मुझसे हाई स्कूल-कक्षाओं के लिये एक पद्य-सङ्कलन ग्रन्थ प्रस्तुत करने का विशेष आग्रह किया। धृढावस्था और शारीरिक अन्वस्थतापत्र मैंने इस कार्य को ग्रहण नहीं करना चाहा, परन्तु कतिपय माननीय साहित्य प्रेमी मित्रों के विशेष अनुरोध से मुझे यह स्वीकार करना पडा। अप्रैल मास में चुने हुए पद्यां की अस्थायी सूची बोर्ड कार्यालय में भेजी गई। तदनन्तर हिन्दी-बोर्स-कमेटी के सदस्यों के साथ दो दिन तक पूर्ण विचार विनिमय होने के पश्चात् समाप्त पद्यां का अन्तिम निर्णय हुआ।

इस सङ्कलन ग्रन्थ में प्राचीन और अर्वाचीन काल के छन्दोस (अष्ट छाप के कवियां का अलग गिनती से तीस) प्रमुख कवियों के पद्यां का संग्रह हुआ है। जहाँ तक हो सका, इसमें हिन्दी के प्रतिनिधि-कवियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है, जिससे विद्यार्थियों को भिन्न भिन्न प्रकार की शैलियों का ज्ञान हो सके। प्रत्येक कवि के पद्यां के चुनाव में यह लक्ष्य रहा है कि जिन छात्रों के लिये यह सङ्कलन तैयार हुआ है, उन्हें उनके समझने में कठिनाई न हो। छात्रों के लिये कवियों और उनकी शैली के परिचय का महत्त्व जान परिशिष्ट में उनकी सक्षिप्त जीवनी देकर कविता सम्बन्धी विशेषताओं का निर्देश किया गया है। इस संग्रह में अनुचित शृङ्गारामय कविताओं को स्थान न देते हुए स्मृतिदायक एवं छात्रोपयोगी पद्यां का चुनाव किया गया है। राजस्थान और मध्यभारत के प्राचीन डिगल साहित्य में भी उच्च-कोटि की कविता मिलती है, जिसका इधर कुछ पद्यां से प्रकाशन आरम्भ हुआ है। छात्रों को इसका यत्किञ्चित् परिचय कराने के लिये कविराजा बाँकीदास के कुछ नीति सम्बन्धी दोहों को चुना गया है। सङ्कलन ग्रन्थों में डिगल कविता का प्रवेशमात्र

उद्देश्य से इस सप्ताह में सरल डिंगल का केवल सवा पृष्ठ रखा गया है, परन्तु आशा है कि भविष्य में तैयार होनेवाले सङ्कलनों में डिंगल साहित्य को भी उसका यथोचित स्थान प्राप्त होगा। पुस्तक के आधी छप जाने पर प्रेस ने ज्ञतलाया कि सब कविताओं का 'मैटर' निर्धारित पृष्ठसंख्या में नहीं छप सकेगा। तब कविजनों की सहायता में कमी न करते हुए विवश उनके कतिपय पद्यों को घटाना पडा।

आशा है, पद्यों की सुगन्धि सम्यक्तता और उपादेयता को ध्यान में रखते हुए यह सङ्कलन हाई-क्लैस् कक्षाओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा और इसे पढ़कर छात्रों में काव्य-प्रेम की वृद्धि तथा उच्च कोटि के पद्य साहित्य के अध्ययन की ओर प्रवृत्ति होगी। प्रस्तुत ग्रन्थ के बहुत थोड़े समय में छपने पर भी इसका मूल सशोधन सावधानीपूर्वक हुआ है। फिर भी छपते समय कहीं-कहीं अनुस्वार तथा मात्राओं के टूटने और अक्षरों के हट जाने से कुछ शब्दों का रूपान्तर हो गया है, अतः सहायक पाठक उन्हें सुधार कर दें।

मैं उन सब कविजनों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं का इस पुस्तक में सप्ताह करने की मुझे सहय अनुमति प्रदान की है। साथ ही प्रयाग के इण्डियन प्रेस और काशी नागरीप्रचारिणी सभा के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन आवश्यक है। अन्त में अपने भायुष्मान् पुत्र प्रोफेसर रामेश्वर ओझा, एम्. ए. का नामोत्प्रेक्ष आवश्यक है, क्योंकि यदि सङ्कलन, सम्पादन, सशोधन आदि सब कार्यों में मुझे उसका पूर्ण सहयोग और अनवरत परिश्रम सुलभ न होता, तो इस सङ्कलन ग्रन्थ को हिन्दी प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करना मेरे लिए असम्भव नहीं तो अतिदुष्कर अवश्य था।

आजमेर,
 वैशाखी पूर्णिमा,
 सं० १९९२ वि०

गौरीशङ्कर-दीराचन्द्र शोभा

विषय-सूची



विषय	पृष्ठ
(१) कर्पूर	१—५
साम्बी	१
पट	४
(२) मलिक मुहम्मद जायसी	६—६
गोरा की चौर रति	६
(३) महात्मा सूरदास	१०—१६
दिनय दाणी	१०
जल लीला	१३
कालिय-मर्दन	१५
उद्धव का व्रज-गमन	१६
अमर गीत	१७
सुदामा-चरित	१८
(४) अष्टश्लोक	२०—२१
परमानन्ददास	२०
सुम्भनदास	२०
चतुर्भुजदास	२०
नन्ददास	२१
गोविन्दस्वामी	२१
(५) कविगजा रॉनीदास*	२२—२३
नीलि-भजरी	२२
(६) गोस्वामी तुलसीदास	२४—६१
मन्त और असन्त (रामचरितमानस) २४	

* कालक्रमानुसार इनका स्थान भूषण के पश्चात् होना चाहिये —स०

लक्ष्मण-परशुराम-सवाद (रा च मा)	२७	
प्रभाती (गीतावली)	३६	
गंगा-पार-भामा (कवितावली)	३९	
राम का वन-गमन (रामचरितमानस)	४१	
स्फुट पद्य (त्रिनय-पत्रिका और गीतावली †)	५७	
(७) मीरोंगई		६०—६६
पद	६२	
(८) केशवदास		६७—८१
हनुमानजी का लका-गमन	६७	
(९) रत्नखान		८२—८६
प्रेम-मोटिका	८२	
स्फुट पद्य	८५	
(१०) विहारीलाल		९०—९२
दोहे	९०	
(११) भूपण		९३—९७
काली कपर्दिनी	९३	
छत्रसाल की तलवार	९३	
शिवाजी की प्रशंसा	९४	
(१२) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र		९८—१०५
✓ गंगा गरिमा	९८	
पावम मसान	९९	
नारद की वीणा	१००	
✓ वह छवि	१०१	
✓ यमुना वर्णन	१०१	
✓ प्रेम महिमा	१०५	

(१३) श्रीधर पाठक		१०६—११४
कादसीर-सुप्पमा	१०६	
कायर	११०	
हिमालय	११०	
वन शोभा	११३	
घुन्दावन	११४	
(१४) नाथूराम शंकर शर्मा		११५—११६
प्रबोध पूर्णिमा	११५	
स्फुट पद्य	११६	
(१५) जगन्नाथदास 'रत्नाकर'		११७—१२३
कलकानी	११७	
(१६) अयोध्यासिंह उपाध्याय		१२४—१२५
प्रातः माल-वर्णन	१२४	
(१७) मयिलीशरण गुप्त		१२६—१३६
मातृभूमि	१२६	
शत्रुन्तरा की निदा	१३१	
अनार	१३५	
यात्री	१३६	
(१८) रामनरेश त्रिपाठी		१३७—१४०
प्रकृति-वर्णन	१३७	
कहों	१४१	
जागरण	१४१	
(१९) सियारामशरण गुप्त		१४२—१
एक फूल की चाद	१४३	

(२०) गोपालशरणसिंह		१५०—१५४
शिशु की दुनिया	१५०	
घनश्याम	१५१	
ताजमहल	१५१	
घह छत्रि	१५२	
(२१) प्रियोगी हरि		१५५—१६०
वीर-वत्तीसी	१५५	
वीर-बाहु	१५६	
(२२) सुमित्रानन्दन पन्त		१६१—१६७
यादल	१६१	
(२३) सुभद्राकुमारी चौहान		१६८—१७१
मेरा नया बचपन	१६८	
ठुकरा दो या प्यार करो	१७०	
फूल के प्रति	१७१	
(२४) महादेवी वर्मा		१७२—१७४
उस पार	१७२	
(२५) राय कृष्णदास		१७५—१७७
घातक	१७५	
समर्थन	१७५	
वेणु की गिनती	१७६	
पदस्थ	१७६	
(२६) जयशङ्कर 'प्रसाद'		१७८—१७९
भारत मटिमा	१७८	
परिशिष्ट (कवि-परिचय)		१८०—१८६
'नीति मजरी' पर टिप्पणी		१८६

कवि-रत्न-माला
दी-गरी ।

पद्य-रत्न-माला

कवीर

साखी

सात समेंद की मसि करौं, लेखनि सत्र वनराइ ।
धरती सत्र कागद करौं, हरि-गुण लिख्या न जाइ ॥ १ ॥
कस्तूरी कुडलि बसै, मृग हूँटै वन माहिं ।
ऐसैं घटि घटि राम हैं, दुनिया देखै नाहिं ॥ २ ॥
सो साई तन में बसै, ज्यूँ पुहपन में वास ।
कस्तूरी कै मिरग ज्यूँ, फिरि फिरि सूँघै वास ॥ ३ ॥
पँडे मोती वीसरथो, अधा निकस्या आइ ।
जोति निना जगदीस की, जगत धलघ्यौ जाइ ॥ ४ ॥
हरिया जाँशै रूसडा, उस पाणी का नेह ।
सूका काठ न जाँशै, कनहूँ वृठा मेह ॥ ५ ॥
मिरमिर फिरमिर बरखिया, पाँहण ऊपरि मेह ।
माटी गलि सँजल भई, पाँहण वोहि तेह ॥ ६

कमोदनी जलहरि वसै, चन्दा वसै अकासि ।

जौ जाही का भावता, सो ताही कै पासि ॥ ७ ॥

पोथी पढि पढि जग मुवा, पढित हुवा न कोइ ।

ढाई अच्छर .प्रेम का, पढै सु पढित होइ ॥ ८ ॥

चातक सुतहिं पढावही, आन नीर मति लेइ ।

मम कुल यही सुभाव है, खाति धूँद चित देख ॥ ९ ॥

पपिदा को ,पन देखि करि, धीरज रहै न रंच ।

मरते दम जल में पडथा, तरु न वोरी चच ॥ १० ॥ ५

साँझ पडी, दिन आथव्यो, चकवी दीन्ही रोइ ।

चल चक्रवा वा देस में, रैण कदे नहिं होइ ॥ ११ ॥

॥ अचर कुजाँ कुरलियाँ, गजि रहे सब ताल ।

जिनिपै गोविंद बीछुटे, तिनि कै कबण हवाल ? ॥ १२ ॥

आँखडियाँ माँई पडी, पथ निहारि निहारि ।

जीभडियाँ छाला पडथा, राम पुकारि पुकारि ॥ १३ ॥

धिरह कमडल कर लिये, वैरागी दो नैण ।

माँगै दरस मधूकरी, छक्या रहै दिन रैण ॥ १४ ॥

नाम भजौ तौ अब भजौ, वहुरि भजौगे कव्व ?

हरियर हगियर हँखडा, डघण हो गये सबर ॥ १५ ॥

जौ ऊग्या सो आँथनै, फूल्या सौ कुँमिलाइ ।

जौ चिखिया सो ढहि पढै, जौ आया सो जाइ ॥ १६ ॥

काची काया, मन अधिर, धिर धिर काम करत ।

धूँ ज्यूँ नर निघटक फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसत ॥ १७ ॥

माली आगत देखि करि, फलियन करी पुकार ।
 फूले फूले तिन लिये, काल्हि हमारी धार ॥ १८ ॥
 फटा चुनावै मेडियोँ, लॉवी भीत उसारि ?
 घर तौ साढे तीन हथ, घना त पौने न्यारि ॥ १९ ॥
 करीर नौनति आपणी, दिन दस तोहु वजाइ ।
 ए पुर पट्टन ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥ २० ॥
 सातौं मन्द जु बाजते, घरि घरि होते राग ।
 ते मदिर माली पडे, वैसण लागे काग ॥ २१ ॥
 करीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि-
 मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि ? ॥ २२ ॥
 तन कौ जोगी सत्र करै, मन कौ मिरला कोइ ।
 सत्र मिधि सहजै पाइये, जो मन जोगी होइ ॥ २३ ॥
 साधु भया तौ क्या भया, बोलै नाहिं निचार ।
 हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥ २४ ॥
 साधू ऐसा चाहिये, जैसेँ सूप सुभाड ।
 सार-सार कौ गहि रहै, थोथा देइ उडाइ ॥ २५ ॥
 खँदन तौ घरती सहै, धाढ सहै धनराड ।
 सत सहै दुरजन-बचन, दूजै सहा न जाइ ॥ २६ ॥
 करगस सम दुरजन बचन, रहे सत जन टारि ।
 त्रिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ? ॥ २७ ॥
 काच, कथीर, अधीर नर, जतन करत है भंग ।
 साधू कचन ताइये, चढै सवाया रग ॥ २८ ॥

सन्त न बाँधै गाँठडी, पेट समाता लेइ ।
 साईं सँ सनमुख रहै, जहाँ माँगै तहाँ देइ ॥ २९ ॥
 साईं, इतना दीजिये, जामें कुटुम समाइ ।
 मै भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाइ ॥ ३० ॥
 जौ जल बाँधै नाव में, घर मे बाँधै दास ।
 दोऊ हाथ उलौंचिये, यहु सज्जन कौ काम ॥ ३१ ॥
 केला तबहि न चेतिया, जब ढिगु लागी बेरि ।
 अकके चेतै क्या भया, काँटनि लीन्ही घेरि ॥ ३२ ॥
 सूरु तब ही परखिये, लडै धरणी कै हेत ।
 पुरिजा - पुरिजा कटि पडै, तऊ न छाँडै खेत ॥ ३३ ॥
 कायर बहुत पम्पुवहाँ, वहकि न बोलै सूर ।
 काम पड्यौ ही जाँणिये, किसकै मुख परि नूर ॥ ३४ ॥
 रितु बसत जाचक भया, हरखि दिया द्रुम पात ।
 तातैं नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात ॥ ३५ ॥
 सुख कै माथे सिल परै, नाँम हृदय तैं जाइ ।
 बलिहारी वा दुखस्य की, पल-पल नाँम रटाइ ॥ ३६ ॥

पद

करम-गति टारे नाहिं टरी ।

मुनि बसिष्ठ से पडित्त ज्ञानी, सोच के लगन धरी ।

सीता-हरन, मरन दसरथ को, वन में विपति परी ॥

कहँ वह फन्द कहौं वह पारधि, कहँ वह मिरगधरी ।

सीया को हरि लै गो रावन, सुमरन लंक जरी ॥

नीच हाथ हरिचढ निकाने, बलि पाताल धरी ।
 कोटि गाय नित पुत्र करत नृग, गिरगिट जोन परी ॥
 पादब जिनके आप सारथी, तिनपर विपति परी ।
 दुरजोधन को गरम घटायी, जदुकुल नास करी ॥
 राहु-केतु औ भानु-चन्द्रमा, विधि सजोग परी ।
 कहत 'करीर' सुनो भाई साधो, होनी होके रही ॥ १ ॥

माया महा ठगिनि हम जानी ।
 निरगुन फाँस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी जानी ॥
 केसव के कमला है वैठी, सिव के भवन भवानी ।
 पडा के पूरत ह वैठी, तीरथ मे भई पानी ॥
 योगी के योगिन है वैठी, राजा के घर रानी ।
 काहू के हीरा है वैठी, काहू के कौडी कानी ॥
 भक्तन के भक्तिनि है वैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।
 कहै 'करीर' सुनो हो सन्तो, यह सब अकथ कहानी ॥ २ ॥

नाम सुमिर, पछतायगा ।
 पापी जियरा तोभ करत है, आज काल उठि जायगा ॥
 लालच लागी जनम गँगाया, माया भरम मुलायगा ।
 धन जोत्रन का गरव न फीजै, पागद ज्यों गलि जायगा ॥
 जत्र जम आय केस गहि पटकै, ता दिन कछु न बसायगा ।
 सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं, तो मुख चोटा स्यायगा ॥
 धरमराय जत्र लेखा मँगै, क्या मुख लेके जायगा ।
 कहत 'करीर' सुनो भाई साधो, साध सङ्ग तरि जायगा ॥ ३ ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

गोरा की वीर-गति

मतेँ वैठि वादल औ गोरा । सो मत कीज परै नहिँ भोरा ॥
 सुबुधि सौँ ससा सिंघ कहँ भारा । कुबुधि सिंघ कूआँ, परि हारा ॥
 जस तुरकन राजा छर साजा । तस हम साजि छोड़ावहिँ राजा ॥
 सोरह सै चडोल सँवारे । कुँवर सँजोइल कै वैठारे ॥
 पदमावति कर सजा विवानू । बैठि लोहार न जानै भानू ॥
 साजि सबै चडोल चलाये । सुरँग ओहार मोति बहु लाये ॥
 भये सग गोरा वादल बली । कहत चले—'पदमावति चली' ॥
 विनवा वादसाह सौँ जाई— । अब रानी पदमावति आई ॥
 विनती करै आइ हौँ दिह्यी । चितउर कै मोहि स्योँ है किह्यी ॥
 एक घरी जौ अज्ञा पावौँ । राजहिँ सौँपि मँदिर महँ आवौँ ॥
 इहाँ उहाँ कर स्वामी दुआँ जगत मोहि आस ।

पहिले दरस देखावहु तौ पठवहु कैलास ॥ १ ॥

अज्ञा भई—'जाइ एक घरी' । छुँछि जौ घरी फेरि बिधि भरी ॥
 चलि विवान राजा पहँ आवा । सँग चडोल जगत सब छावा ॥
 पदमावति कै भेस लोहारु । निकसिकाटि वैदि कीन्ह जोहारु ॥
 दठा कोपि जस छूटा राजा । चढा तुरग, सिंघ अस गाजा ॥
 गोरा वादल गँडै काढ़े । निकसिकुँवर चढि चढि भये ठाढ़े ॥
 लेइ राजा चितउर कहँ चले । छुटेव सिंघ मिरिग गलभले ॥
 चढा साहि चढि लाग गोहारी । कटक असूम परी जग कारी ॥

फिरि गोरा वादल सौं कहा— । 'गहन छटि पुनि चाहै गहा ॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानु । अथ इहै गोइ इहै मैदानू' ॥
तुइ अथ राजइ लेइ चलु गोरा । हौं अथ उलटि जुरौं भा जोरा ॥
तौ पावौं वादल अस नाऊं । जो मैदान गोइ लेइ आऊं ॥

आजु सडग चौगान गहि, करी सीस रिपु गोइ, ।

खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ ॥ २ ॥

तत्र अगमन होइ गोरा मिला— । 'तुइ राजइ लेइ चलु, वादला । ॥
मैं अथ आउ भरी औ भूँजी । फा पछिताव आउ जौ पूजो ॥
बहुतहि मारि मरौं जौ जूझी । तुम जिनि रोएहु तौ मन धूमकी' ॥
कुँवर सहस सग गोरा तीन्हे । और वीर वादता सँग कीन्हे ॥
गोरहि समदि मेघ अस गाजा । चला लिये आगे करि राजा ॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढा । पूरुख देख चाव मन बाढा ॥

आन रुटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ ।

परति आव जग कारी, होति आव दिन साँझ ॥ ३ ॥

फिरि आगे गोरा तत्र हौंका । 'खेलौं, करौं आजु रन साका' ॥
ओनई घटा चहुँ दिसि आई । छटहिं धान मेघ मरि लाई ॥
भई बगमेल, सेता धनघोरा । औ गजपेल, अकेल सो गोरा ॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा । भार पहार जूझ कर काँधा ॥
लगे भरै गोरा कै आगे । वागु न मोर घाव मुख लागे ॥
जैस पतग आग धँसि लेई । एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
दूटहिं सीस, अधर धर भारै । लोटहिं कधहिं कध निरारै ॥
कोई परहिं रुहिर होइ राते । कोई घायल घूमहिं गाते ॥

कोइ खुर खेह गये भरि भोगी । भसम चढाइ परे होइ जोगी ॥

- घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल ।

जूझि कुँवर, सब निबरे, गोरा रहा अकेल ॥ ४ ॥

गोरै देख, साथि सब जूझा । 'आपन काल नियर भा' बूझा ॥

कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला । लारन्ह सौँ नहि मरै अकेला ॥

लेइ हँकि हस्तिन्ह कै ठटा । जैसे पवन विदारै घटा ॥

जेहि सिर देइ कोपि करवारू । स्यो घोडे दूटै असवारू ॥

लोटहिं सीस कवध निनारे । माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥

रेलि फाग सेंदुर छिरकावा । चाँचरि रेलि आगि जनु लावा ॥

हस्ती घोड धाइ जो धूका । ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ॥

भइ अज्ञा सुलतानी—वेगि करहु एहि हाथ ।

रतन जात है आगे लिये पदारथ साथ ॥ ५ ॥

सवै कटक मिलि गोरेहि छेंका । गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥

जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा । पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा ॥

तुरुक बोलावहि—बोलै वाहाँ । गोरै भीचु थरी जिउ माहाँ ॥

जिनि जानहु गोरा सो अकेला । सिंघ कै मोंछ हाथ को मेला ॥

सिंघ जियत नहिं आपु धरावा । मुये पाछ कोई घिसियावा ॥

करै सिंघ मुख सौँहहि दीठी । जौ लागि जियै देइ नहिं पीठी ॥

'रतनसेन जो बाँधा मसि गोरा के गात ।

जौ लागि रुहिर न धोवौँ तौ लागि होइ न रात' ॥ ६ ॥

सरजा वीर सिंघ चढि गाजा । आइ सौँह गोरा सौँ बाजा ॥

पहुँचा आइ सिंघ असवारू । जहाँ सिंघ गोरा बरियारू ॥

मारैसि साँग, पेट महुँ धँसी । काढेसि हुमुकि, आँति मुहुँ रखी ॥

भाट कहा—'धनि गोरा, तू भा रावन राव ।

आँति समेटि बाँधिकै, तुरय देत है पाँव' ॥ ७ ॥

फहेसि अत अत्र भा मुहुँ परना । अत त रखे खेह सिर भरना ॥

फहिकै गरजि सिंघ अस धावा । सरजा सारदूल पहुँ आवा ॥

सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ । परा खडग जनु परा निहाऊ ॥

वज्र क साँग वज्र कै डौंढा । उठी आगि तस बाजा खौंढा ॥

मानहु वज्र वज्र सौं बाजा । मन ही कहा परी अब गाजा ॥

तस मारा हठि गोरै, उठी वज्र कै आगि ।

कोर्ड नियरै नहि आवै, सिंघ सदूरहि लागि ॥ ८ ॥ १११

तव सरजा कोपा ^{खर}वरिगडा । जनहु सदूर केर भुजदण्डा ॥

कोपि गरजि मारैसि तस राजा । जानहु दृटि परि सिर गाजा ॥

ठौंठर दृट, फूट सिर तासू । स्यो सुमेर जनु दृट अकासू ॥

धमकि उठा सत्र सरग पतारू । फिरि गई दीठि फिरा ससारू ॥

भइ परलय अस सब ही जाना । काढा खडग सरग नियराजा ॥

तस मारैसि स्यो घोडै फाटा । धरती फाटि सेस फन फाटा ॥

गोरा परा खेत महुँ, सुर पहुँचावा पान ।

वादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान ॥ ९ ॥



महात्मा सूरदास

विनय-चाणी

अविगत गति कछु कहत न आवै ।

ज्यों गूंगे मीठे फल को रस, अन्तर्गत ही भावै ॥

परम स्वादु सब ही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।

मन वानी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ॥

रूप रेख गुन जाति जुगति विनु, निरालस मन चकृत धावै । ^{चक्रि १}

सब विधि अगम विचारहिं ताते, 'सूर' सगुन लीला पद गावै ॥

जापर दीनानाथ ढरे ।

सोइ कुलीन बडो सुन्दर सोइ, जिनपर कृपा करे ॥

राजा कौन बडो रावन तें, गर्वहि गर्व गरे ।

रङ्ग सु कौन सुदामाहू तें, आपु समान करे ॥

रूपव कौन अधिक सीता तें, जन्म वियोग भरे ।

अधिक पुरुष कौन कुत्रिजा तें, हरि पति पाई वरे ॥

योगी कौन बडो शकर तें, ताको काम छरे ।

कौन विरक्त अधिक नारद सों, निसि दिन भ्रमत फिरे ॥

अधम सु कौन अजामिलहू तें, यम तहँ जात डरे ।

'सूरदास' भगवन्त भजन विन, फिर फिर जठर जरे ॥

अविगत गति जानी न परै ।

मन नच अगम अगाध अगोचर, केहि विधि बुधि सँचरै ॥

अति प्रचण्ड पौरुष बल पाये, केहरि भूख मरै ।

विन आसा विन उद्यम कीने, अजगर उदर भरै ॥
 रीते भरै भरे पुनि ढोरै, चाहे फेरि भरै ।
 कवहुँक वृन बूढै पानी में, कवहुँ सिला तरै ॥
 बागर ते सागर करि राखै, चहुँ दिसि नीर भरै ।
 पाहन बीच कमल विगसाही, जल में अगिनि जरै ॥
 राजा रङ्ग रङ्ग तें राजा, लै सिर छत्र धरै ।
 'सूर' पतित तरि जाइ तनिक मे, जो प्रमु नेकु ढरै ॥

अब मैं नान्यौ बहुत गोपाल ।

काम क्रोध को पहिरि चोलना, कठ प्रिय की माल ॥
 महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा सद रसाल ।
 भरम भरथो मन भयो पुखावज, चलत कुसगति चाल ॥
 वृक्षा नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
 माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलफ दै भाल ॥
 कोटिक कला काछि देखराई, जल थल सुधि नहीं फाल ।
 'सूरदास' की सत्रै अविशा, दूर करौ नँदलाल ॥

जन्म सिरानो अटके अटके ।

राज काज सुत पितु की ढोरी, विन विवेक फिरथो भटके ॥
 कठिन जु ग्रथि परी माया की, तोरी जात न भटके ।
 ना हरि भजत न सन्त समागम, रह्यो बीच ही राटके ॥
 ज्यों बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छुटत नटके ।
 'सूरदास' सोभा क्यों पावै, पिय विहीन धन भटके ॥ ।

जग में जीवत ही को नातो ।

मन त्रिछुरे तनु छार होइगो, कोउ न वात पुछातो ॥

मैं मेरी कन्हूँ नहिं कीजै, कीजै पच सुहातो ।

विषय असक्त रहत निसि वासर, सुख सीरो दुख तातो ॥

साँच भूँठ करि माया जोरी, आपुन रूपो खातो ।

‘सूरदास’ कछु थिर नहिं रहई, जो आयो सो जातो ॥

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।

जैसे उडि जहाज को पछी, फिरि जहाज पै आवै ।

कमल-नैन को छाँडि महातम और देव को ध्यावै ॥

परम गग को छाँडि पियासो, दुरमति कूप खनावै ॥

जिन मधुकर अबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै ।

‘सूरदास’ प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

अपुनपौ आपुन ही विसरथो ।

जैसे खान काच मन्दिर ने, भ्रमि भ्रमि भँकि परथो ॥

। हरि सौरभ मृग-नाभि वसत है, द्रुम-वृण सूँधि मरथो ।

व्यों सपने में रङ्ग भूप भयो, तसि करि अरि पकरथो ॥

व्यों केहरि प्रतिनित्र देखिकै आपुन कूप परथो ।

जैसे गज लरि फटिक-सिला में दसननि जाइ अरथो ॥

भरकट मूठि छाँडि नहिं दीन्ही घर घर द्वार फिरथो ।

। ‘सूरदास’ नलिनी को सवटा कहि कौने जकरथो ॥

छाँडि मन, हरि-विमुपन को सग ।

जिनके सग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भग ।

कहा भयो पयपान कराये, बिख नहिं तजत मुअग ॥

कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हावाये गग ।

खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अग ॥

गज को कहा न्हावाये सरिता, बहुरि घरै रोहि छग । ३८५ ॥

पाहन पतित वान नहिं भेदत, रीतो करत निखग ॥

‘सूरदास’ खल कारी कामरि, चढत न दूजो रग ॥

बाल-लीला

कर गहि पग अँगुठा मुख मेलत ।

प्रभु पौढे पालने अकेले, हरपि हरपि अपने रँग खेलत ॥

सिब सोचत विधि बुद्धि विचारत, बट बाह्यो मागर जल मेलत ।

पिढरि चले घन प्रलय जानिकै, दिगपति दिग दतौन सकेलत ॥

मुनि मन भीत भये भव कपति, सेप सकुचि सहसौ फन पेलत ।

उन ब्रज-वासिन बात न जानी, समुझे ‘सूर’ सकट पगु पेलत ॥

कहाँ लौं घरनों सुन्दरताइ ।

खेरात कुँअर कनक आँगन मे, नैन निरसि छनि छाइ ॥

‘कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति, बहुनिधि सुरँग बनाइ ।

मानो नवघन ऊपर राजत, मधया धनुष चढाइ ॥

अति सुदेम मृदु हरत चिकुर मन, मोहन मुख बगराइ ।

मानो प्रगट कज पर मंजुल, अति अवली फिरि आइ ॥

नील खेत पर पीत लाल मनि, लटकनि भाल रुनाइ ।
 सनि गुरु असुर देव गुरु मिलि मनु, भौम सहित समुदाइ ॥ १०१ ॥
 दूध-दत-दुति कहि न जाति अति, अद्भुत इक उपमाइ ।
 किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनु, धन में विद्यु छिपाइ ॥
 खंडित वचन देत पूरन सुप, अल्प जल्प जल-पाइ ।
 घुदुरुन चलत रेनु तनु मडित, 'सूरदास' बलि जाइ ॥

जागिये ब्रजराज कुँअर, कमल कुसुम फूले ।
 कुमुद-वृन्द सकुचत भये, भृङ्गलता भूले ॥
 तमचुर खग रौर सुनहु, बोलत वनराई ।
 राँभति गौ खिरकन में, बछरा हित धाई ॥
 विधु मलीन रवि प्रकास, गावत नर-नारी ।
 'सूर' स्याम प्रात उठौ, अबुज कर धारी ॥

खेलत स्याम ग्वालन सग ।

सुबल, हलधर अरु सुदामा करत नाना रग ॥
 हाथ तारी देत भाजत, सबै करि-करि होड ।
 धरज हठाधर—स्याम तुम जनि, चोट लगिहै गोड ॥ गोडे ३०
 तब कह्यो—मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात ।
 मोरी जोरी है सुदामा, हाथ मारे जात ॥
 बोलि तत्र उठे श्रीसुदामा, जाहु तारी मारि ।
 आगे हरि पाछे सुदामा, धरयो स्याम हँकारि ॥
 जानिकै मैं रह्यो ठाढो छुवत कहा जु मोहि ?
 'सूर' हरि खीजत सरसा सों, मनहिं कीनो कोहि ॥

मैया, मोहिं दाऊ बहुत रिक्कायो । ६१६१ २११११

मोसों कहत-भोल को लीनो, तोहि जसुमति कत्र जायो ।

कहा कहीं एहि रिस के मारे, खेलनहों नहिं जातु ॥

पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो वातु ॥

गोरे नद जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरौर ।

चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सत्र, सिखै देत बलनीर ॥

तू मोही को मारन सीसी, दावहि कजहुँ न सीमै ।

मोहनको मुख रिस समेत लखि, यसुमति सुनि सुनि रीमै ॥

१११) सुनहु कान्ह बलभद्र चलाई, जनमत ही का धूत ।

२०२ 'सूर' स्याम मो गोधन की सों, हों माता तू पूत ॥

निगम स्वरूप देखि गोकुल हरि ।

जाको दरस दूरि देवन कों, सो घाँधो यसुदा ऊरल धरि ॥

चुटुकिन दै दै ग्वाल गवावत, नाचत कान्ह बाल लीला धरि ।

जेहि डर भ्रमत पवन रवि ससि जल, सो क्यो डरै लकुटिया के डरि ॥ ६१६२

छौर-समुद्र सयन सतत जेहि, माँगत दूध पतोरी दै भरि । ६१६३

'सूरदास' गुन के गाहक हरि, रसना गाइ गये अनेक तरि ॥

कालिय-मर्दन

चरन कमल बदों जगदीस जे गोधन के सँग धाये ।

जे पद कमल धूरि लपटाने, कर गहिकै गोपी चर लाये ॥

जे पद-कमल युधिष्ठिर पूजे, राजसूय पै चलि आये ।
 जे पद कमल पितामह भीषम, भारत में देखन पाये ॥
 जे पद-कमल संभु चतुरानन, हृदय-कमल अन्तर राखे ।
 जे पद कमल रमा-उर-भूपन, वेद भागवत मुनि भाखे ॥
 जे पद कमल लोक पावन त्रय, बलि राजा के पीठ धरे ।
 ते पद-कमल 'सूर' के स्वामी, काली फन पर निरत करे ॥

उद्धव का ब्रज-गमन

। हस काग को सङ्ग भयो ।

कहँ गोकुल कहँ गोप-गोपिका, विधि यह सङ्ग दयो ॥
 जैसे कचन काँच सग, ज्यों चदन सग कुगाधि ।
 जैसे खरी कपूर दोउ यक, यह भई ऐसी सधि ॥
 जल तिन मीन रहत कहँ न्यारे, यह सो रीति चलावत ।
 जब ब्रज की बातें यहि कहियत, तनहि तबहि उचटावत ॥
 याका ज्ञान थापि ब्रज पठऊँ, और न याहि उपाय ।
 सुनहुँ 'सूर' याको वन पठऊँ, यहै वनैगो दूँ ॥

ऊधो तुम यह निहचै जानो ।

मन बच क्रम ये तुमहि पठावत, ब्रज को तुरत पलानो ॥
 पूरन ब्रह्म अलग्नी अविनासी, ताके तुम हो ज्ञाता ।
 देखन रूप जाति कुल नाहीं, जाके नहिं पितु माता ॥
 यह मत दै गोपिन को आवहु, विरह न मन में भापति ।
 'सूर' तुरत तुम जाड कहौ यह, ब्रह्म बिना नहिं आसति ॥

भ्रमर-गीत

मधुप, तुम कहौ कहौ त आये हो ।
 जानति हौ अनुमान आपने, तुम यदुनाथ पठाये हो ॥
 वैमेहि धरन गमन तनु वैसे, वै भूपण मजि ताये हो ।
 लै मरनसु मँग स्याम सिवारे, अब का पर पहिराये हो ॥ ५८
 'प्रहो मधुप, एकै मन सत्रको, सु तौ वहाँ लै छाये हो ।
 अब यह कौन सयान बहुरि ब्रज, जा कारन उठि आये हो ॥
 मधुपन की मानिनी मनोहर, तहाँ जाहु जहँ भाये हो ।
 'सूर' जहाँ लौ स्याम गात हौ, नानि भले करि पाये हो ॥

मधुकर, हमहीं क्यों समुक्तावत ।

बारबार ज्ञान गीता ब्रज, अबलनि आगे गावत ॥
 नैद-नदन विनु कपट कथा ए, कत कहि रुचि उपजावत ।
 स्ररु चदन जो अग सुधारत, कहि कैसे सुख पावत ॥
 देगि विचारत ही जिय अपन, नागर हो जु कहावत ।
 सत्र सुमनन पर फिरी निरखि करि, काहे कमल वैधावत ।
 चरन कमल कर नयन कमल कर, नयन कमलवर भावत ।
 'सूरदास' मनु अलि अनुरागी, केहि विधि हो बहुरावत ॥

पुनहु गापी हरि को सन्देश ।

हरि समाधि अन्तर्गति ध्यावहु, यह उनको उपदेश ॥
 वै अत्रिगति अविनासी परन, सद्य घट रहे समाइ ।
 निर्गुन ज्ञान विनु मुक्ति नहीं है, वेद पुरानति गाइ ॥

सगुन रूप तजि निर्गुन ध्यावो, इक चित इक मन लाइ ।
 यह उपाज करि विरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तज आइ ॥
 दुसह सँदेम सुनत मागौ को, गोपीजन त्रिलखानी ।
 'सूर' विरह की कौन चलावै, बूडत मन त्रिन पानी ॥

सुदामा-चरित

दूरिहिं तें देखे बलवीर ।

अपने बाल सुसखा सुदामा, मलिन वसन अरु छीन सरीर ॥

पौंढे हुते प्रयक परम रुचि, रुक्मिनि चमर डोलावत तीर ।

उठि अकुलाइ अगमने लीने, भिन्नत नैन भरि आये नीर ॥

तेहि आसन वैठारि स्यामघन, पूछी कुसल करौ मन धीर ।

ल्याये हौ सु नेहु किन हमको, अब कहा राखि दुरावत चीर ॥

दरसन परस दृष्टि सभापन, रही न उर अतर कछु पीर ।

'सूर' सुमति तन्दुल चनात ही, कर परकरयो कमला भइ भीर ॥

ऐसी प्रीति की बलि जाउँ ।

सिंहासन तजि चले मिलन को, सुनत सुदामा नाउँ ॥

गुरु वाचव अरु विप्र जानिकै, हाथनि चरन पसारे ।

" अरु माल दै कुसल वृम्भिकै, अर्धासन वैठारे ॥

अर्धांगी वृम्भति मोहन सो, कैसे हितू तुम्हारे ।

दुर्बल दीन छीन देखति हौं, पाउँ कहाँ तें धारे ॥

सदीपन के हम औ सुदामा, पढे एक चटसार ।

'सूर' स्याम की कौन चलावै, भक्तनि कृपा अपार ॥

कहो कैसे मिले न्याम सँघाती ।

कैसे गये सु कन्त कौन प्रियि, परसे वख कुचील कुजाती ॥

सुनि सुदर प्रतिहार जनायो, हरि समीप रुक्मिणी जहाँ ती ।

उभै मुठी लीनी तन्दुल की, मपति सचित करी ही थाती ॥

‘सूर’ सु-दीनग्रन्धु करुनामय, करत बहुत जो श्री न रिसाती ॥

गोपाल बिना और मोहिं ऐसो कौन सँभारै ।

हँसत हँसत हरि दौरि मिले सुन, उर तें उर नहि टारै ॥

छीन अग जीरन वख, दीन मुख निहारै ।

मम तन पथ रज लागी, पीत पटसौं मारै ॥

सुखद सेज आसन दीन्हों, सु हाथ पाय परारै ।

/ हरि हित हर गग धरे, पद जल सिर डारै ॥

कहि कहि गुरु गेह-कथा, सकल दुख निवारै ।

न्याय निरख ‘सूरदास’ हरि पर सत्र वारै ॥



अष्टछाप

अष्टछाप-पदावली

कहा करौ वैकुण्ठहि जाय ।

जहँ नहि नैद जहँ नहीं जसोदा, जहँ नहि गोपी ग्वाल न गाय ॥

जहँ नहि जल जमुना को निरमल, और नहीं कदमन की छाया ।

‘परमानंद’ प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरि जाय बलाय ॥

—परमानन्ददास ।

सन्तन का मिकुरी सन काम ।

आवत जात पनहियाँ दृष्टी, विसरि गयो हरि-नाम ॥

जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिवे परी सलाम ।

‘कुभनदास’ लाल गिरिधर तिन, और सबै बेकाम ॥

तुम नीके दुहि जानत गैया ।

चलिये कुँवर रसिक-मन-मोहन, लगौं तिहारे पैया ॥

तुमहि जानि करि कनक दोहिनी, घर ते पठई मैया ।

निकटहि है यह, रखिक हमारो, नागर लेहुँ बलैया ॥

देखियत परम सुदेस लरिकई, चित चुहँट्यौ सुँदरैया ।

‘कुँभनदास’ प्रभु मानि लई रति, गिरि गंगरधन रैया ॥

—कुभनदास ।

जसोदा कहा कहीं हों बात ।

तुम्हरे सुत के करतत्र मोप, कहत कहे नहि जात ॥

भाजन फोरि डोरि सब गोरस, लै मासन दधि खात ।

जो बरजौं तौ आसि देखापै, रचह नाहि सकात ॥

और अटपटी कहँ लों बग्नौ, छुवत पानि सो गात ।
‘दास चतुर्भुज’ गिरिधर-गुन हों, कहति कहति सकुचात ॥

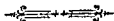
—चतुर्भुजदास ।

परम दुसह श्रोक्वण त्रिरह-दुरा न्याप्यो तिन में ।
कोटि वरस लागि नरक भोग दुरा भुगते छिन में ॥
सुभग सरित के तीर वीर बल धीर गये तहँ ।
कोमल मलय समीर छनि की महा भीर जहँ ॥
कुसुम धूरि धूँधरी कुज छनि पुजनि छाई ।
गुजत मजु मलिन्द वेनु जनु वजति सोहाई ॥
इत महकति मालती चारु चम्पक चित चोरत ।
उत घनसारु तुसारु मलय मन्तारु म्कोरत ॥
नन मर्कत मनि स्याम कनक मनिमय ब्रजमाला ।
वृन्दावन गुन रीमि मनहु पहिराई माला ॥

—न ददास ।

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर-सुत को उठति न्दवावति ।
करि शृंगार बसन भूपन सजि फूलन रचि रचि पाग बनावति ॥
छुटे वन्द बागे अति सोभित त्रिच त्रिच चोव अरगजा लावति ।
सूथन लाल फूँदना शाभित आजु कि छनि कहु कहति न आवति ॥
त्रिभिध कुसुम की माला उर धरि श्रीकर मुरली ब्रेत गहावति ।
लै दरपन देखे श्रीमुख को ‘गोविँ’ प्रसु चरननि सिर नावति ॥

—गोविन्दस्वामी ।



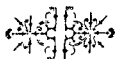
× कविराजा चोकीदास

नीति-मंजरी

(दोहे)

काज अहोणो ही करै, एह प्रकृत खळ अंग ।
 रामण पठियो राम दिस, कर सोत्रनो कुरग ॥ १ ॥
 सवळा खळ सँसाधियाँ, निखळ जाय खळ नास ।
 मूसो मेळ मँजार कर, वचियाँ विपत विलास ॥ २ ॥
 वैरो कटक नाग विप, वीछू कँवच वाघ ।
 याँसँ दूर रहतडाँ, दूर रहै दुघ दाप ॥ ३ ॥
 वैरी वैर न वीमरै, विना हिये ही वक ।
 राह अहै राकेस नूँ, नभ सिर मात्र निसक ॥ ४ ॥
 वारवधू हो हरण वित, नेह जणावै नैण ।
 थूँ सिर लेवा ऊचरै, वैरी मीठा वैण ॥ ५ ॥
 वैरी रा मीठा वचन, फळ मीठा किपाक ।
 वे खाधौँ वे मानियाँ, हुवा कृतात - खुराक ॥ ६ ॥
 वातौँ वैर विसावणा, सैणौँ तोडै नेह ।
 हासै विप पीणा हरप, आछा काम न एह ॥ ७ ॥
 दायण मारै दाव सँ, नीत वात निरधार ।
 पेख हिरण चीतो प्रकट, भूसै पेख मँजार ॥ ८ ॥

पाणी पडियौ पेस पग, दिल मत हरप दिवाल ।
 पैलौ पाडण पडत पग, इण री आहिज चाल ॥ ९ ॥
 ऐ प्रक मूनी ऊजळा, मीठा - बोला मोर ।
 पूछौ सफरी पनग नूँ, क्रत ऊघडै कठोर ॥ १० ॥
 मर सप्रळों आगै निप्रल, नीर धकै वानीर ।
 वाय धकै कृण जाय वच, भलौ नमण गुण भीर ॥ ११ ॥



गोस्वामी तुलसीदास

सत और असत

चदों सत असज्जन चरना । दुःखप्रद उभय बीच कछु वरना ॥
 विद्युरत एक प्राण हरि लेई । मिलत एक दुःख दारुन देई ॥
 उपजहिँ एक सग जग माहीं । जलज जोक जिमि गुन विलगाहीं ॥
 सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
 भलअनभलनिजनिज करतूती । लहत सुजस अपलोक विभूती ॥
 सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलि मल सरि न्याधू ॥
 गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥

दो०—भलो भलाइहि पै लहै लहै निचाइहि नीचु ।

। सुधा सराहिअ अमरता मरल सराहिअ मीचु ॥

खल अघ-अगुन साधुगुन-गाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
 तेहि तें कछु गुन दोष बराने । सम्ह त्याग न विनु पहिचाने ॥
 भलेउ पोच सब त्रिधि उपजाए । गनि गुन-दोष वेद प्रिलगाए ॥
 कहहि वेद, इतिहास, पुराना । विधि-प्रपचु गुन-अवगुन साना ॥
 दुःख सुख पाप पुन्य दिन राति । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
 दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिअ सजीवनु माहुरु मीचू ॥
 माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अराच्छि रक अवनीसा ॥
 कासी भग सुरसरि क्रमनासा । मरु मारव महिदेव गवासा ॥
 सरग नरक अनुराग विरागा । निगम अगम गुन दोष विभागा ॥

दो०—जड चेतन गुण दोषमय त्रिख कीन्ह करतार ।

सत हस गुन गहहिं पय परिहरि धारि - विकार ॥

अस विवेक जप देइ त्रिधाता । तत्र तजि दोष गुनहि मनु राता ॥
 । कातासुभाउ करम ^{बहुलता} वरिआई । भलेउ प्रकृतिरम चुकड भलाई ॥
 सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं । दलि दुख दोष त्रिमल जसु देहीं ॥
 खलउ करहिं भल पाइ सुसगू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभगू ॥
 । लगि सुवेप जग-उचक जेऊ । वेपप्रताप पूजियहि तेऊ ॥
 उघरहिं अत न होई निगाह । कालनेमि त्रिमि रावन राह ॥
 क्रियेहु कुवेपु साधु सनमानू । जिमि जग जामजत हनुमानू ॥
 हानि कुसग सुसगति लाहू । लोहहु वेद विदित सत्र काहू ॥
 गगन चढइ रज पवन-प्रसगा । कीचहि मिलइ नीच-जल मगा ॥
 साधु असाधु सदन सुक सारी । सुमिरहि रामु देहिं गनि गारी ॥
 धूम कुमगति कारिय हाई । लिखिअ पुरान मजु मसि सोई ॥
 सोइ जल अनल अनिल-मघाता । होइ जलद जग जीवनु दाता ॥

(रामचरितमानस—बालकांड)

सत असत भेद त्रिलगाई । प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ॥
 सतन के लच्छन सुनु भ्राता । अगितित श्रुति पुरान त्रिरयाता ॥
 सत असतन्ह वै असि करनी । जिमि कुठार चदन आचरनी ॥
 काटै परसु मलय मुनु भाई । निजगुन देइ सुगध वसाई ॥
 तातें सुर सीसन्ह चढत जगजलाभ श्रीरड ।

। अनल दाहि पीटत घनहिं परसुगन यह दह ॥

विषय अलपट सील गुनाकर । परदुख दुख सुख मुख देखें पर ॥

सम अभूतरिपु विमद त्रिरागी । लोभासुरप हरप भय त्यागी ॥
 कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन वच क्रम मम भगति श्रमाया ॥
 विगत काम मम नाम-परायन । साति धिरत विनती मुदितायन ॥
 सीतलता सरलता मइत्री । द्विज पद प्रीति वरम जनयित्री ॥
 ये सय लच्छन वसहिं जासु उर । जानहु तात सत सतत फुर ॥
 सम दम नियम नीति नहि डोलहिं । परुप वचन कयहुं नहिं बोलहि ॥

दो०-निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पदकज ।

ते सज्जन मम भ्रानप्रिय गुनमदिर सुख पुज ॥

सुनहु अमतन केर सुभाऊ । भूलेहु सगति करिअ न काऊ ॥
 तिन्हकर सग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहि घालै हरहाई ॥
 खलन्ह हृदय अतिताप त्रिसेखी । जरहिं सदा परमपति देखी ॥
 जहँ कहँ निंदा सुनहि पराई । हरपहि मनहुं परी निधि पाई ॥
 काम क्रोध-मद-लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
 वयरु अरुन सय काहू सो । जो कर हित अनहित ताहू सो ॥
 भूठइ लेना भूठइ देना । भूठइ भोजन भूठ चवेना ॥
 बोलहिं मधुर वचन जिमि मोरा । खाहिं महा अहि हृदय कठोरा ॥

दो०-परद्रोही पर दार-रत परधन पर - अपवाद ।

ते नर पाँवर पापमय देह वरे मनुजाद ॥ १११ ॥

लोभइ श्रोदन लोभइ डासन । सिम्नोदरपर जमपुर-त्रासन ॥
 काहू कै जों सुनहि वडाई । खास लेहिं ननु जूडी आई ॥
 जय काहू कै देखहिं त्रिपती । सुगो भये मानहुं जगनृपती ॥

स्वारथ-रत परिवार त्रिरोधी । लपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
 मातु पिता गुरु मित्र न मानहिं । आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥ १
 करहिं मोहनस द्रोह पुरावा । सत सग हरिकथा न भावा ॥
 अवगुन सिंधु मदमति कामी । वेदप्रिद्रूपक पर - धन-स्वामी ॥
 मिप्रद्रोह सुरद्रोह त्रिसेपा । दम कपट जिअ धरे सुनेपा ॥
 दो०-ऐसे अधम मनुज रल वृतजुग त्रेता नाहि ।

द्वार कछुक वृन्द बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । परपीडा सम नहिं अधमाई ॥
 निरनय सक्त पुरान वेद कर । कहेउँ तात जानहिं कोविद नर ॥
 नर सरीर धरि जे परपीरा । करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥
 करहिं मोहनस नर अघ नाना । स्वारथरत परलोक नसाना ॥
 कालरूप तिन्ह कहूँ मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ करम फल दाता ॥
 अस निचारि जे परम सयाने । भजहिं मोहिं ससृति दुग्य जाने ॥
 त्यागहिं कर्म सुभासुभ-नायक । भजहिं मोहिं सुर नर-मुनि नायक ॥
 सत अमतन्ह के गुन भासे । तेन परहिं भव जिन्ह लखिरासे ॥
 (उत्तरकांड)

लक्ष्मण-परशुराम-सवाद

तेहि अवसर सुनि सिम-जनु भगा । आए भृगु कुल-कमत पतगा ॥
 देखि महीप सकल सकुचाने । वाज कपट जनु लया लुनाने ॥
 गौर सरीर भूति भलि भ्राजा । भात तिसाल त्रिपुड त्रिगजा ॥
 सीम जटा ससिनदन सुहावा । रिसिनम कछुक अरुन होइ आवा ॥

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ।
 वृषभकध उर बाहु विसाला । चारु जनेउ माल मृगद्वाला ।
 कटि मुनिनसन तून दुई बाँधे । धनु सर कर कुठार कल काँधे ।

दो०—सत वेप करनी कठिन वरनि न जाइ सरूप ।

धरि मुनितनु जनु वीर रसु आयेउ जहँ सब भूप ॥

देखत भृगुपति वेपु कराला । उठे सकल भय-विकल भुआला ॥
 पितुसभेत कहि निज निज नामा । लगे करन सब दडप्रनामा ॥
 जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी । सो जाने जनु आइ खुटानी ॥
 जनक बहोरि आइ सिरु नावा । सीय बोलाइ प्रनाम करावा ॥
 आसिप दीन्हि मखी हरपानी । निज समाज लै गई सयानी ॥
 निस्वामित्र मिले पुनि आई । पदसरोज मेले दोउ भाई ॥
 रामु लपनु दसरथ के ढोटा । देखि असीस दीन्ह भल जोटा ॥
 रामहि चितै, रहे भरि लोचन । रूप अपार मार-भद मोचन ॥

दो०—बहुरि बिलोकि विदेह सन कहट्टु काह अति भीर ।

पूँछत जानि अजान जिमि न्यापेउ कोपु मरीर ॥

समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारन महीप सब आए ॥
 सुनत वचन फिरि अनत निहारे । देखे चापखड महि डारे ॥
 अति रिस पोले वचन कठोरा । कहु जडजनक धनुष केइ तोरा ॥
 वेगि देख्ताउ मूढ न त आजू । उलटो महि जहँ लगि तत्र राजू ॥
 अति डर उतर देत नृप नार्हा । कुटिल भूप हरपे मन मारहाँ ॥
 सुर मुनि नाग नगर-नर नारी । सोचहि मजल घास उर भारी ॥
 मन पछित्ताति मीय महतारी । विधि अत्र सँवरी घात निगारी ॥

भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता । अरध निमेषु कलप सम वीता ॥

दो०-सभय त्रिलोके लोग सत्र जानि जानकी भीरु ।

इत्य न हरप त्रिपाद कछु बोले श्रीरघुभीरु ॥

नाथ सभु-वनु-भजनिहारा । होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ॥

आयसु काह कहिअर किन मोही । सुनि रिमाइ बोले मुनि कोही ॥

संपक सो जो करै भेदकाई । अरिकरनी करि करिअर लराई ॥

सुनहु राम जेहि सिव अनु तारा । सहम राहु-सम सो रिपु मोरा ॥

सो त्रिलगाउ त्रिहाइ समाजा । नतु मारे जेहें सत्र राजा ॥

सुनि मुनिअचन लपन मुसुकाते । बोले परसुधरहि अपमाने ॥

बहु धनुही तोरा लरिकाई । करहुँ न अमि रिस कीन्ह गामाई ॥

एहि धनु पर ममता केहि हेतू । सुनि रिसाइ कह भृगु कुता-केतू ॥

दो०-रे नृपगालक कालप्रम बोलत तोहि न सँभार ।

धनुही सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल मसार ॥

रापन कहा हँसि हमरे जाना । सुनहु देव सत्र धनुष समाना ॥

का छति लाभु जून धनु तोरे । देखा राम नयन के भोरे ॥

छुअत दृष्ट रघुपतिहु न दोषू । मुनित्रिनु काज करिअर कत रोषू ॥

बोले चितै परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥

बालक बोलि अर्थो नहि तोही । केवल मुनि जड जानति माही ॥

बाल ब्रह्मचारी अति कोही । त्रिस्व त्रिदित छत्रिय-कुल द्रोही ॥

भुजगल भूमि भूप विनु कीन्ही । त्रिपुल वार महिदेवन्ह दीन्ही ॥

सहस-बाहु-भुज-छेदनिहारा । परसु विलोकु महीपकुमारा ॥

दो०-मातुपितहि जनि सोचनस करसि महीपकिसोर ।

गरभन के अरभक दलन परसु मोर अति घोर ॥

विहँसि लपन बोले मृदु वानी । अहो मुनीस महाभट मानी ॥

पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू । चहत उडावन फूँकि पहारू ॥

इहाँ कुम्हडगतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥

देखि कुठार सरासन वाना । मैं कट्टु कहेउँ सहित अभिमाना ॥

भृगुकुल समुक्ति जनेउ विलोकी । जो कुछ कहहु सहौं रिस रोकी ॥

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इनपर न सुराई ॥

वधे पाप अपकीरति हारे । मारतहू पा परिअ तुम्हारे ॥

कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा । व्यर्थ धरउ धनु वान कुठारा ॥

दो०-जो विलोक अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर ।

सुनि सरोप भृगुवस मनि बोले गिरा गँभीर ॥

कौसिक सुनहु मद यह वालक । कुटिल कालवस निज-कुल-घालक ॥

भानु वस - राकेस - कलकू । निपट निरकुस निठुर निसकू ॥

काल-कवलु होइहि छन माहीं । कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं ॥

तुम्ह हटकहु जौ चहहु उवारा । कहि प्रतापु बलु रोपु हमारा ॥

लपन नहेउ मुनि सुजस तुम्हारा । तुम्हहि अछत को वरनै पारा ॥

अपने मुँह तुम आपनि करनी । वार अनेक भौंति बहु वरनी ॥

नहिं सतोप तौ पुनि कलु कहहु । जनि रिस गेकि दुसह दुख सहहु ॥

बीरव्रती तुम्ह धीर अछोभा । गारी देत न पावहु सोभा ॥

दो०-सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहि आपु ।

विद्यमान रिपु पाइ रन कायर करहि प्रलापु ॥

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लाया । वार वार मोहि लागि बोलाना ॥
 सुनत लपन के वचन कठोरा । परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥
 अत्र जनि देइ दोष मोहि लोगू । कटुवादी बालक बबजोगू ॥
 बाल मिलोकि बहुत मैं वाचा । अत्र यह मरनिहार भा साँचा ॥
 कौसिक कहा छमिअ अपराधू । जाल दोष गुन गनहि न साधू ॥
 कर कुठार मे अरुहन कोही । आगे अपराधी गुरद्रोही ॥
 उतर देत छाँडौं त्रिनु मारे । केवल कौसिक सील तुम्हारे ॥
 न तु एहि काटि कुठार कठोरे । गुरुहि उरिन हातउँ श्रम थोरे ॥
 दो०-गाधिसुनु कह हृदय हँसि मुनिहि हरिअरै सूक ।

अजगर खडेउ ऊर जिमि अजहुँ न बूझ अनूझ ॥

फहेउ लपन मुनि सील तुम्हारा । को नहिँ जान त्रिदित समारा ॥
 माता पितहि उरिन भए नीके । गुररिन रहा सोच बड जी के ॥
 सो जनु हमरेहि माये काढा । दिन चलि गयेउ व्याज बहु बाढा ॥
 अब आनिअ व्यवहरिआ धोली । तुरत देउँ मैं धैती खोली ॥
 सुनि कटुअचन कुठार सुंधारा । हाय हाय सत्र सभा पुकारा ॥
 भृगुनर परसु देखावहु मोही । त्रिप्र त्रिचारि बचौ नृपद्रोही ॥
 मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे । द्विज देवता घरहिँ के बाढे ॥
 अनुचित कहि सत्र लोग पुकारे । रघुपति सैनहिँ लपन निवारै ॥

दो०-लपन उतर आहुति मरिस भृगु-धर-दोष कृमानु ।

बडत देखि जल-सम वचन बोले रघु कुल-भानु ॥

नाथ करहु बालक पर छोहू । सूघ दूधमुग्ग करिअ न कोहू ॥
 जौं पै प्रमुप्रभाउ कछु जाना । तौ कि वरानरि करै अयाग ॥

जौं लग्निका कलु अचगरि करहीं । गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
 करिअ कृपा सिसु मेवक जानौ । तुम्ह सन सील धीर मुनि ग्यानी ॥
 राम उचन सुनि कछुक जुडाने । कहि कछु लपन बहुरि मुसुकाने ॥
 हँसत देखि नयसिख रिसव्यापी । राम तोर भ्राता बड पापी ॥
 गौर सरीर स्याम मन माहीं । काल-कूट मुख पयमुख नाहीं ॥
 सहज टेढ अनुहरै न तोही । नीच मीचसम देख न मोही ॥

दो०—लपन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल ।

जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं विस्व प्रतिकूल ॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोप करिअ अथ दाय्या ॥
 दूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । वैठिअ होइहि पाय पिराने ॥
 जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई । जोरिय कोठ बड गुनी बोलाई ॥
 बोलन लपनहिं जनक डेराही । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ॥
 थरथर काँपहि पुर नर नारी । छोट कुमार खोट बड भारी ॥
 भृगुपति सुनि सुनिनिर्भय बानी । रिस तन जरै होइ बलहानी ॥
 बोले रामहिं देखि निहोरा । वचौं त्रिचारि बधु लघु तोरा ॥
 मन मलीन तनु सुदर कैसे । त्रिप-रस भरा कनकघट जैसे ॥

दो०—सुनि लड्डिभन त्रिहँसे बहुरि नयन तररे राम ।

गुरु-ममीप गवने सकुचि परिहरि धानी वाम ॥

अभि त्रिनोत मृदु सीतल बानी । बोले राम जोर जुग पानी ॥
 सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक-उचन करिअ नहिं काना ॥
 बररै बालक एक सुभाऊ । इन्हहि न सत बिदूपहिं काऊ ॥
 तेहि नाहीं कछु काज विगारा । अपरावी मै नाथ तुम्हारा ॥

कृपा, कोप, बध बध गासाई । मो पर करिअ दास की नाई ॥
 कहिअ वेगिजेहि विधिरिस जाई । मुनिनायक सोइ करों उपाई ॥
 कह मुनि राम जाय रिस केसे । अजहुँ अनुजतवचितव अनैसे ॥
 एहिंके कठ कुठार न दीन्हा । तो मैं काह कोप करि कीन्हा ॥

दो०—गर्भ सबहिं श्रवनिप रवैनि सुनि कुठारगति घोर ।

परसु अछत देखौं जिअत बैरी भूप किसोर ॥

वहै न हाथ दहे रिस छाती । भा कुठार कुठित नृपघाती ॥
 भयउ धाम त्रिधि फिरेउ सुभाऊ । मोरे हृदय कृपा कसि काऊ ॥
 आजु देव दुख दुसह सहाना । सुनि सौमित्रि बहुरिसिरु नावा ॥
 बाउ । कृपा मूरति अनुकूला । बोलत बचन भरत जनु फूला ॥
 जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता । क्रोध भए तन राखु निघाता ॥
 देखु जनक हठि बालक एहू । कीन्ह चहत जड जमपुर गेहू ॥
 वेगि करहु किन आँखिन ओटा । देखत छोट गोट नृपढोटा ॥
 निहँसे लपन कहा मुनि पाहीं । मूँदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं ॥

दो०—परसुराम तव राम प्रति बोले उर अति क्रोध ।

सभु-सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रगोध ॥

बधु कहै कटु समत तोरे । तू छल त्रिनय करसि पर जोरे ॥
 करु परितोष मोर समामा । नाहिं त धाँडु कहाउर रामा ॥
 छल तजि करहि समर सिवद्रोही । बधुसहित न त मारौं तोही ॥
 भृगुपति बकहिं कुठार उठाए । मन मुसुकाहिं राम सिर नाए ॥
 गुनहु लपन कर हमपर रोपू । कतहुँ सुधाइहु तें यइ दोपू ॥
 टेढ जानि बँदै सत्र काहू । थक चद्रमहि प्रसै न राहू ॥

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा । कर कुठार आगे यह सीसा ॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी । मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥

दो०-प्रभु सेवकहि समर कस तजहु विप्रवर रोसु ।

वेष विलोकि कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु ॥

देखि कुठार-बान-धनु-धारी । भइ लरिकहि रिस वीरु विचारी ॥
नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा । वससुभाव उतर तेइ दीन्हा ॥
जौं तुम्ह अवतेहु मुनि की नाई । पदरज सिरसिसु धरत गोसाईं ॥
छमहू चूक अनजानत केरी । चहिअ विप्रउर कृपा घनेरी ॥
हमहिं तुम्हहिं सरवरि कस नाथा । कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड नाम तुम्हारा ॥
देव एकगुन धनुष हमारे । नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ॥
सन प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु विप्र अपराव हमारे ॥

दो०-वार वार मुनि विप्रवर कहा राम सन राम ।

बोले शृगुपति सरुप होइ तहूँ बधुसम धाम ॥

निपटहि द्विज करि जानहि मोही । मैं जस विप्र सुनावौं तोही ॥
चाप-सुबा सर आहुति जानू । कोप मोर अतिघोर कृसानू ॥
समिधि सेन चतुरग सुहाई । महामहीप भए पसु आई ॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे । समरजग्य जग कोटिक कीन्हे ॥
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे । बोलसि निदरि-विप्र के भोरे ॥
भजेउ चाप दाप बड दाढा । अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढा ॥
राम कहा मुनि कहहु विचारी । रिस अति बडि लघु चूक हमारी ॥
छुवतहि दूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥

दो०-जों हम निदरहि विप्र वटि सत्य सुनहु भृगुनाथ ।

तो अस को जग सुभट जेहि भयवस नावहि माथ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना । समजल अधिक होउ बलवाना ॥
जों रन हमहिं प्रचारै कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥
छत्रिय-तनु धरि समर सकाना । कुलकलक तेहि पाँवर जाना ॥
कहौं सुभाव न कुलहि प्रससी । कालहु डरहिं न रन रघुससी ॥
निप्रवस कै असि प्रभुताई । अभय होइ जो तुम्हहिं डराई ॥
सुनि मृदु वचन गूढ रघुपति के । उधरे पटल परसु धर-भति के ॥
राम रमापति कर धनु लेहू । रौचहु मिटै मोर सदेहू ॥
देत चाप आपुहि चलि गयेऊ । परसुराम मन प्रिसमय भयेऊ ॥

दो०-जाना राम - प्रभाउ तन पुलक प्रफुलित गात ।

जारि पानि बोले वचन हृदय न प्रेम समात ॥

जय रघुस-वनज-वन-भानू । गहन-दनुज कुल-दहन कृसानू ।
जय सुर-विप्र-धेनु-हितकारी । जय मद-भोह कोह-भ्रम-हारी ॥
पिनयसील करुना-गुन सागर । जयति वचन-रचना अतिनागर ॥
सेवक-सुखद सुभग मन अगा । जय सरीर-ध्वनि कोटि-अनगा ॥
करौं काह मुख एक प्रससा । जय महेस-मन-मानस-हमा ॥
अनुचित वचन कहेउँ अग्याता । छमहु छमामदिर दोउ भ्राता ॥
वाहि जय जय जय रघु-कुल केनू । भृगुपति गए अनहिं तप हेतू ॥

प्रभाती ✓

भोर भयो जागहु, रधुनदन ।
 गत-व्यलीक, भगतनि-उर-चदना ॥
 ससि करहीन, छीनदुति तारे ।
 तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे ॥
 विकसित फज, कुमुद विलखाने ।
 लै पराग रस मधुप उडाने ॥
 अनुजसखा सत्र बोलनि, आए ।
 वंदिन्ह अति पुनीत गुन गाए ॥
 मनभावतो कलेऊ ॥ कीजै ॥
 'तुलसिदास' कहँ जूँठनि दीजै ॥

प्रात भयो तात, बलि, मातु, विधु वदन पर ।
 मदन वारौं कोटि, उठौ प्रानप्यारे ॥
 सूत मागध वदि वदत त्रिरुदाबली,
 द्वार सिसु अनुज प्रियतम तिहारे ।
 कोक गतसोक अबलोकि समि छीनछवि,
 अरुनमय गगन, राजत रुचि तारे ।
 मनहुँ रबिबाल-भृगराज तमनिकर-करि
 दलित, अति ललित मनिगन विथारे ।
 सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहम पिक
 केकि रव कलित, बोलत निहग वारे ॥

मनहुँ मुनिवृद्ध, रघुवसमनि । रावरे
 गुनत गुन आस्रमनि सपरिवारे ।
 सरनि पिकसित कजपुज मकरद वर,
 मजुतर मधुर मधुकर गुजारे ।
 मनहुँ प्रभुजन्म मुनि धेन अमरावती, ।
 इन्दिरानद मदिर सँवारे । ।
 प्रेम सन्मिलित वर वचन-रचना अकनि अर --- /
 राम राजीव लोचन उघारे ।
 दास 'तुलसी' मुदित, जननिकरै आरती,
 सहज सुदर अजिर पाँव धारे ॥ ~ ~

जागिए कृपानिधान जानराय रामचद्र ।
 जननी कहै बारवार भोर भयो प्यारे ।
 राजिवलोचन विसाल, प्रीति-वापिका मराल,
 दूलित कमल-वदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥
 अरुन उदित, विगत सर्वरी, समाक किरनिहीन,
 दीन दीपजोति, मलिन टुति समूह तारे ।
 मनहुँ ज्ञान घन प्रकास, वीते सन भव-त्रिलास
 आसत्रास-तिमिर तोप-तरनि-तेज जारे ॥
 बोलत रगनिकर मुखर मधुर करि प्रतीत
 सुनहु स्रवन, प्रानजीवन घन, मेरे तुम वारे ।
 मनहुँ वेद वदी मुनिवृद्ध सूत मागधादि विरुद्ध
 वदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥

विकसित कमलावली, चले प्रपुज चचरीक ^{म०२१}
 गुजत कल कोमल धुनि त्यागि कज न्यारे ।
 जनु विराग पाइ सकल सोक कूप गृह विहाइ
 शृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे ॥
 सुनत वचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
 भागे जजाल विपुल, दुख-रुद्व दारे ।
 'तुलसिदास' अति अनद, देखिकै मुखारविंद,
 छूटै भ्रमफद परम मद द्वद भारे ॥

वोलत अवनिप-कुमार ठाढे नृप-भवन-द्वार,
 रूप-सील-गुन उदार जागहु मेरे प्यारे ।
 मिलसित कुमुदिनि, चकोर, चक्रवाक हरप भोर,
 करत सोर तमचुर रग, गुजत अलि न्यारे ॥
 रुचिर मधुर भोजन करि, भूपनसजि सकल अग,
 सग अनुज बालक सब विप्रिध त्रिवि सँवारे ।
 करतल गहि ललित चाप भजन रिपु निकर-दाप,
 कटितट पटपीत, तून सायक अनियारे ॥ ३
 उपनन मृगया-विहार-कारन गवने कृपाल,
 जननी मुख निरसि पुन्यपुज निज विचारे ।
 'तुलसिदास' सग लीजै, जानि दीन अभय कीजै,
 दीजै मति धिमल गावै चरित धर तिहारे ॥

गंगा-पार-गमन

सत्रैया

नाम अजामिल से सलकोटि अपार नदी भव बूडत काढे ।
जे सुमिरे गिरि मेरु सिला-कन, होत अजाम्बुर वारिधि पाढे ॥
'तुलसी' जेहिके पदपयज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढे ।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिवे कहँ माँगत नाव करारे हँ ठाढे ॥

एहि घाटे तें थोरिके दूर अहै कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू ।
परस पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समझाइहौं जू ? ॥
'तुलसी' अवलन न और कछ, लरिका केहि भौति जिआइहौं जू ? ।
वरु मारिए मोहि, त्रिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढाइहौं जू ॥

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन तें बन-वाहन काठ को कोमल है, जल साइ रहा है ॥
पावन पायँ पखारिके नाव चढाइहौं, आयसु होत कहा है ? ।
'तुलसी' सुनि केउट के वर वैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥

घनाचरी

पात भरी सहरी, सकल सुत वारे तारे,
केउट की जाति कछ वेद ना पढाइहौं ।
सत्र परिवार मेरो याही लागि, राजा जू ।
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढाइहौं ? ॥

गौतम की घरनी ज्यो तरनी तरैगी मेरी,
 प्रभु सो निपाद ह्वैके बाद न बढाइहों ।
 'तुलसी' के ईस राम रावरे सों साँची कहों,
 बिना पग धोए नाथ नाव न चढाइहों ॥

जिनको पुनीत वारि धारे सिर पै पुरारि, ^{प्रभु देव}
 त्रिपथगामिनि-जसु वेद कहै गाइकै ।
 जिनको जोगीन्द्र मुनिवृन्द देव देह भरि
 करत निराग जप जोग मन लाइकै ।
 'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
 गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइकै ॥
 तेई पायँ पाइकै चढाइ नाव, धोए त्रिनु,
 रचैहों न पठावनी कै हैहों न हँसाइकै ॥

प्रभुरुरा पाइकै घोलाइ बाल धरिनिहि,
 बढिकै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि ।
 छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गगाजू को,
 धोइ पायँ पीयत पुनीत वारि फेरि फेरि ॥
 'तुलसी' सराहै ताको भाग सानुराग सुर,
 बरपैँ सुमन जय जय कहैँ डेरि डेरि ।
 त्रिवुध, सनेह-सानी बानी, असयानी सुनी,
 हँसे राघौ जानकी लपन, तन हंरि हेरि ॥

राम का वन-गमन

दो-द्वार भीर सेवक सचिव कहहि उदित रति देखि ।

जागे अजहुँ न अवध पति कारन रुवन त्रिसेरि ॥

पछिले पहर भूपु नित जागा । आजु हमहिं बड अचरजु लागा ॥

जाहु सुमत्र जगाबहु जाई । कीजिअ काज रजायसु पाई ॥

गये सुमत्र तत्र राउर पाहीं । देखि भयावन जात डेराहीं ॥

घाइ खाइ जनु जाइ न हेरा । मानहुँ विपति-त्रिपाद-प्रमेरा ॥

पूँछे कोउ न ऊतरु देई । गए जेहि भवन भूप कैकेई ॥

कहि जय जीव वैठि सिर नाई । देखि भूप गति गयेउ सुग्राई ॥

सोच त्रिकल त्रिनरन महि परेऊ । मानहुँ कमल मूळ परिहरेऊ ॥

सचिव सभित सरुड नहिं पूँछी । बोली असुभ भगी सुभ छुँझी ॥

दो०-परी न राजहि नौद निसि हेतु जान जगदीसु ।

रामु रामु रति भोरु किय कहेउ न मरसु महीसु ॥

आनहु रामहि बेगि बुलाई । समाचार तत्र पूँछेहु आई ॥

चलेउ सुमत्र राय रुस जानी । लखी कुचालि कीन्ह कछु रानी ॥

सोच त्रिकल मग परै न पाऊ । रामहि बोलि कहिहि का राऊ ॥

उर धरि धीरज गयेउ दुआरे । पूँछहि मकल देखि मनुमारे ॥

समाधान सो करि सत्रही का । गयेउ जहाँ दिन कर-कुल दीका ॥

राम सुमत्रहि आवत देखा । आरु कीन्ह पितासम लेखा ॥

निरति वदनु कहि भूप-रजाई । रघुकुल-दीपहि चलेउ लिगाई ॥

राम कुभाति सचिव सँग जाहीं । देखि लोग जहँ तहँ त्रिलगाहीं ॥

दो०-जाड देखि रघु-वस-मनि नरपति निपट कुसाजु ।

सहमि परेउ लखि सिंधिनिहि मनहु वृद्ध गजराजु ॥

सूरहिं अवर जरै सब अगू । मनहुँ दीन मनि हीन भुअगू ॥

सरुख समीप देख कैकेई । मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥

करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥

तदपि धीर धरि समउ विचारी । पूछी मधुर-वचन महतारी ॥

मोहि कहु, मातु, तात दुख-कारन । करिअ जतन जेहि होइ निवारन ॥

सुनहु राम मव कारन एहू । राजहिं तुम्हपर बहुत सनेहू ॥

देन कहेउ मोहिं दुइ बरदाना । माँगेउँ जो कहु मोहि सुहाना ॥

सो सुनि भयउ भूपउर सोचू । छाँडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥

दो०-सुत-मनह इत वचन उत सकट परेउ नरेसु ।

सकहु त आयसु धरहु सिर भेटहु कठिन कलेसु ॥

निधरक वैठि कहै कटु वानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥

जीभ कमान, वचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु लच्छ-समाना ॥

जनु कठोरपनु धरे सरीरु । सितै धनुष-विद्या वर श्रीरु ॥

सत्र प्रसगु रघुपतिहिं सुनाई । वैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥

मन मुसकाइ भानु-कुल भानू । राम सहज आनन्द निधानू ॥

बोले वचन प्रिगत मव दूपन । मृदु मजुल जनु वाग-विभूपन ॥

सुनु जननी सोड सुतु बड-भागी । जो पितु मातु वचन अनुरागी ॥

तनय मातु-पितु-तोपनिहारा । दुरलभ जननि सकल ससारा ॥

दो०-मुनिगन मिलनु थिमैपि वन सत्रहि भँति हित मोर ।

तेहि महुँ पितु-आयसु नहुरि समत जननी तोर ॥

भरतु प्रानप्रिय पावहि गजू । त्रिधिसत्र त्रिधि मोहि सनमुख आजू ॥
 जौं न जाउँ धन ऐसहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ-समाजा ॥
 सेवहि अरैहु कलपतरु त्यागी । परिहरि अभिय लेहि त्रिपु मागी ॥
 तेउ न पाइ अस समउ चुनार्हा । देखु त्रिचारि मातु मन मारही ॥
 अम्व एकु दुख मोहि त्रिमेसी । निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
 थोरिहि वात पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥
 राउ धीर गुन-उदधि अगाधू । भा मोहितें कछु बड अपराधू ॥
 तातें मोहि न कहत कछु राऊ । मोरिसपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥

दो० सहज सगल रघुवर-वचन कुमति कुटिल करि जान ।

चलइ जौंक जिमि उक गति जद्यपि सलिल समान ॥

रहसी रानि रामरुख पाई । बोली रुपटसनेह जनाई ॥
 सपथ तुम्हार भरत कै आना । हेतु न दूसर में कछु जाना ॥
 तुम्ह अपराधु जोगु नहि ताता । जननी-जनक-बन्धु सुपदाता ॥
 राम मत्य सधु जो कछु कहहू । तुम पितु मातु उचन रत अहहू ॥
 पितहि बुझाई कहहू, बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
 तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्है । उचित न तामु निरादरु कीन्है ॥
 लागहि कुमुरा वचन सुभ कैसे । मगह गयादिकु तीरथ जैसे ॥
 रामहि मातु उचन सत्र भाए । जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाए ॥

दो०—गइ मुरुझा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह ।

सचिव राम-आगमन कहि त्रिनय समयसम कीन्ह ॥

अवनिय अकनि रामु पगु धारे । धरि धीरजु तत्र नयन उधारे ॥
 सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरनु परत नृप रामु निहारे ॥

लिये सनेह-पिकल उर लाई । गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई ॥
 रामहि चितै रहेउ नरनाहू । चला त्रिलोचन धारिप्रवाहू ॥
 सोकत्रिवस कछु कह न पारा । हृदय लगावत नारहिं वारा ॥
 विधिहि मनाव राउ मन माहीं । जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं ॥
 सुमिरि महेसहि कहै निहोरी । बिनती सुनहु सदा सिव मोरी ॥
 आसुतोप तुम श्रवढर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ॥
 दा०-तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सा मति रामहिं देहु ।

वचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु ॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊँ । नरक परउँ वरु सुरपुरे जाऊँ ॥
 सत्र दुख दुसह सहावउ मोहीं । लोचन-ओट रामु जनि होहीं ॥
 अस मन गुनै राउ नहिं धौला । पीपर-पात-सरिस मनु डोला ॥
 रघुपति पितहि प्रेम-वस जानी । पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी ॥
 देस काल अवसर अनुसारी । बोले वचन बिनोद विचारी ॥
 तात कहीं कछु करौं ढिठाई । अनुचित ध्रमव जानि लरिकाई ॥
 अति लघु-वात लागि दुख पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
 देखि गोसाईंहिं पछेउँ माता । सुनि प्रसगु भये सीतल गाता ॥

दो०-मगल-ममय सनेहप्रस सोच परिहरिअ तान ।

आयसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात ॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
 चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितुमातु प्रानसम जाके ॥
 आयसु पालि जनम-फलु पाई । ऐहौ बेगिदि होउ रजाई ॥ आ०
 त्रिदा मातु सन आवौं माँगी । चलिहौं बनहिं बहुरि पग लागी ॥

अस कहि राम गवनु तव कीन्हा । भूप सोकरस उतरु न दीन्हा ॥
 नगर व्यापि गई घात सुतीछी । छुअत चढी जनु सन तन थीन्ही ॥
 सुनि भए निरुल सकल नर नारी । वेलि पिटप जिमि देग्यि दवारी ॥
 जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई । बड निपादु नहि धीरज होई ॥

दो०—मुख मुखाहिं लोचन स्रवहि मोक न हृदय समाइ ।

॥ मनहुँ करुन-रम-रटकई उतरी अवध बजाइ ॥

मिलेहि मोक्ष निधि वात विगारो । जहँ तहँ देहि कैकइहि गारी ॥
 एहि पापिनिहि वृष्णि का परेऊ । छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥
 निजकर नयन कादि चह दोरा । डारि सुधा त्रिपु चाहति चीरा ॥
 कुटिल कठार कुनुद्धि अभागी । भइ रघु-त्रस घेनु-जन आगी ॥
 पालव, बैठि पेडु एहि काटा । मुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
 सदा रामु एहि प्रानसमाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥
 सत्य कहहिं कवि नारिसुभाऊ । सन निधि अगम अगाध दुराऊ ॥
 निज प्रतिनिम्ब बरुक गहि जाई । जानि न जाइ नारि-गति भाई ॥

दो०—काह न पावकु जारि सरु का न समुद्र समाइ ।

॥ का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥

का सुनाइ विधि, काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
 एक कहहि भल भूप न कीन्हा । वरनिचार नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥
 एक, विधातहि । दूपनु देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह त्रिपु जेहीं ॥
 मरभरु नगर, सोचु सन काह । दुसह-दाहु, उर, मिटा बछाह ॥
 जरहिं विपमजर लेहिं उसासा । कवनि राम विनु जीवन आसा ॥
 विपुल, वियोग, प्रजा अकुलानी । जनु जलचर-नान सूरत पानी ॥

दो०-कहि प्रिय वचन विवेकमय कीन्ह मातु परितोप ।

लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि विपिन-गुन दोप ॥

मातु समीप कहत सकुचार्हीं । बोले समउ समुक्ति मन माहीं ॥

राजकुमारि सिखावन सुनहू । आन भौंति जिय जनि कछु गुनहू ॥

आपन मोर नीक जो चहहू । वचनु हमार मानि गृह रहहू ॥

आयसु मोरि सासु-मेवकाई । सत्रविधि भामिनि भवन भलाई ॥

एहितें अविह धरमु नहिं दूजा । सादर सासु-ससुर-पद-पूजा ॥

जन जव मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेमविकल मतिभोरी ॥

तत्र तव तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुन्दरि, समुक्तायेहु मृदु वानी ॥

कहाँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि, मातुहित राखी तोही ॥

दो०-गुरु-श्रुति-संमत धरमफलु पाइअ विनहि कलेस ।

हठवस सत्र सकट सहै गालव नहुष नरेम ॥

मैं पुनि करि प्रमान पितुवानी । वेगि फिरव सुनु सुमुखि सयानी ॥

दिवस जात नहिं लागिहि धारा । सुन्दरि सिखावनु सुनहु हमारा ॥

जौं हठ करहु प्रेमवस वामा । तौ तुम्ह दुखु पाउव परिनामा ॥

काननु कठिन भयकर भारी । घोर घामु, हिम, धारि, वयारी ॥

कुसकटक मग काँकर नाना । चलव पयादेहि विनु पदत्राना ॥

चरनकमल मृदु मजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥

कदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥

भालु वाघ वृक वेहरि नागा । करहिं नाद सुनि घोरजु भागा ॥

दो०-भूमिसयन बलकल-प्रसन असन रुद-फल-मूल ।

ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल ॥

नर अहार रजनीचर चरही । कपटवेष त्रिधि कोटिक करहा ॥
 लागी प्रति पहार कर पानी । त्रिपिन त्रिपति नहिं जाइ बरानी ॥
 न्याय करत विहँग उन घोरा । निसिचर निकर नारि-नर चोरा ॥
 हरपहिं धीर गहन सुधि आय । मृगलोचनि, तुम्ह भीरु सुभाये ॥
 हमगगनि, तुम्ह नहिं वनजोगू । सुनि अपजसु मोहिं देइहिलोगू ॥
 मानम-सलिल-सुधा-प्रतिपाती । जिअड कि लवनपयोधि मराली ॥
 नय-रसाल-वन-त्रिहरनसीला । सोह कि कोकिल त्रिपिन करीला ॥
 रहहु भवन अस हृदय त्रिचारी । चंदवदनि, दुसु कानन भारी ॥
 दो०-सहज सुहृद-गुरु स्वामि सिरा जो न करै सिर मानि ।

सो पद्धिताइ अघाइ उर अवसि होइ हितदानि ॥

सुनि मृदु वचन मनोहर पिअ के । लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
 सीतल मिरा दाहक भइ कैसे । चकइहि सरद-चन् निसि जैसे ॥
 उतरु न आउ त्रिकल वैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
 वरप्रस गोकि त्रिलोचन गरी । धरि धीरजु उर अबनिकुमारी ॥
 लागि सामुपग कह कर जोरी । द्यमत्रिदेवि, बडि अविनय मोरी ॥
 दोन्हि प्रानपति मोहि सिरा सोई । जेहि विधि मोर परम हित होई ॥
 मैं पुनि समुक्ति दीग्य मन माहीं । पिय नियोग-सम दुसु जग नाहीं ॥

दो०-प्राननाथ कहुनायतन सुन्दर सुप्रद सुजान ।

तुम्ह त्रिनु रघु कुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवारु सुहृद-समुदाई ॥
 सासु ससुर गुरु सजन सहाई । सुत सुन्दर सुसील सुप्रदाई ॥
 जहँ लागि नाथ, नेह अरु नाते । पिय त्रिनु तियहि तरनिहुँते ताते ॥

तन धनु धामु धरनि पुर गजू । पतिविहीन सवु सोकसमाजू ॥
 भोग रोगसम, भूपन भारू । जम-जातना सरिस ससारू ॥
 प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
 जिअ बिनु देह नदी त्रिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
 नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद-प्रिमल विधु-त्रदनु निहारे ॥

दो०-अग मृग परिजन नगर वनु बलकल विमल दुकूल ।

नाथ साथ सुर-सदन-सम परनसाल सुखमूल ॥

बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहिँ सासु ससुर सम सारा ॥
 कुस-किमलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मजु मनोजतुराई ॥
 कन्द मूल फल अमिअ अहारू । अवध सौध सत-सरिस पहारू ॥
 छिनु छिनु प्रभु पद कमल विलोकी । रहिहौँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
 वन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय विपाद परिताप घनेरे ॥
 प्रभु-वियोग-लव-लेस-समाना । सत्र मिलि होहि न कृपानिधाना ॥
 अस जिय जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ सग मोहि छँडिअ जनि ॥
 पिनती बहुत करौँ का स्वामी । करुनामय उर-अन्तर-जामी ॥

दो०-राखिय अवध जो अवधि लागि रहत जानिअहि प्रान ।

दीनबन्धु सुन्दर सुखद मील-सनेह-निधान ॥

मोहि मग चलत न होइहि ह्यारी । छिनु छिनु चरनसरोज निहारी ॥
 सनहिँ भँति पिय-सेवा करिहौँ । मारग-जनित, मरुल स्रम हरिहौँ ॥
 पाय पग्यारि बैठि तरुछाहीं । करिहौँ घाउ मुदित मन माहीं ॥
 स्रम-रुन-सहित स्याम तनु देखे । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे ॥
 सम महि रुन-तरु-पल्लव छासी । पाय पलोटिहि सत्र निसि दासी ॥

पार-वार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभुसँग मोहि चितप्रनिहारा । सिंढप्रधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥

दो०—ऐसेउ वचन कठोर सुनि जौं न हृदय प्रिलगान ।

तौ प्रभु-प्रियम-प्रियोग-दुरप्र सहिहहिं पाँवर प्रान ॥

अस कहि सीय विकल भइ भारी । वचन प्रियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राणा ॥
कहेउ कृपालु भानु कुल नाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहिं विपाद कर अवसरु आजू । वेगि करहु बन-गवन-समाजू ॥
कहि प्रिय प्रचन प्रिया समुझाई । लगे मातुपद आसिप पाई ॥
वेगि प्रजादुरप्र मेटन आठै । जननी निठुर प्रिसरि जनि जाई ॥
फिरिहि दसा त्रिधि बहुरि कि मोरो । देखिहौं नयन मनोहर जोरो ॥
सुघरी सुदिन तात कन होइहि । जननी जिअत बदनप्रिधु जोइहि ॥

दो०—बहुरि वच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुवर तात ।

कवहि बोलाइ लगाइ हिय हरपि निरपिहो गात ॥

लखि सनेह कातरि महतारी । वचनन आन विकल भइ भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह त्रिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ प्रखाना ॥
तन जानकी सासुपग लागी । सुनिय माय में परम अभागी ॥
सेवा-समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
तजन छोमु जनि छौंडिअ छोहू । करमु कठिन कछु योसु न मोहू ॥
सुनि सियप्रचन सासु अकुलानी । दसा कवनि त्रिधि कहैं बग्यानी ॥
पारहि चार लाइ उर तीन्ही । धरि धीरजु सिरप आसिप दीन्ही ॥

अचल होउ अहियातु तुम्हारा । जन लागि गग-जमुन-जल धारा ॥

दो०-सातहि सासु असीस सिरा दीन्हि अनेक प्रकार ।

चली नाइ पदपदुम सिर अति हित चारहिं चार ॥

समाचार जन लछिमन पाये । व्याकुल मिलप-वदन उठि धाये ॥

रूप पुलक तन नयन मनीरा । गहे चरन अतिप्रेम-अधीरा ॥

कहि न सकत कछु चितवत ठाढे । मीनु दीनु जनु जल तें काढे ॥

सोचु हृदय त्रिधि का होनिहारा । सन सुपु सुकृतु सिरान हमारा ॥

मो कहँ काह कहव रघुनाथा । रसिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा ॥

राम विलोकि बन्दु करजोरे । देह गेह सन मन तुनु तोरे ॥

बोले वचनु राम नयनागर । सील-सनेह-सरल-सुख-सागर ॥

तात प्रेमजम जनि कदराहू । समुक्ति हृदय परिनाम उछाहू ॥

दो०-मातु पिता गुरु-स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय ।

लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जाय ॥

अस जिय जानि सुनहु सिरा भाई । करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥

भवन भरत रिपुसूदनु नार्ही । राउ वृद्ध सम दुख मन मारही ॥

मैं वन जाउँ तुम्हहि लेइ माथा । होइ सबहि त्रिधि अवध अनाथा ॥

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारु । सन कहँ परै दुसह-दुख भारु ॥

रहहु करहु सन कर परितोष । नतरु तात होइहि बड दोष ॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥

रहहु तात असि नीति त्रिचारी । सुनत लपनु भये व्याकुल भारी ॥

सिअरे वचन सूति गये कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

दो०-उतरु न आवत प्रेमग्रस गहे चरन अकुचाइ ।

नाथ दासु में, म्यामि तुम्ह तजहु त कहा रसाइ ॥

दीन्ह मोहि सिय नीकि गोसाई । लागि अगम अपनी कदराई ॥
 नरनर धोर धरम-गुर-धारी । निगम नीति कहे त अधिकारी ॥
 में सिसु प्रमु सनेह प्रतिपाता । मन्त्र मेरु कि लेहि मराला ॥
 गुरु पितु मातु न जानों काहू । कहों सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
 जहे लागि जगत सनेह सगाई । प्रीतिप्रतीति निगम निजु गाई ॥
 मोरें सत्रइ एक तुम्ह म्यामी । दीनप्रधु उर-अन्तर-जामी ॥
 धरम नीति उपदेशिअ ताहीं । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
 मन-क्रम प्रचन चरनरत होई । कृपामिधु परिहरिअ कि सोई ॥

दो०-करुनासिंधु सुप्रधु के सुनि श्रुतु वचन विनीत ।

समुक्ताये उर लाड प्रमु जानि सनेह सभोत ॥

माँगहु विदा मातु सन जाई । आवहु वेगि चलहु वन भाई ॥
 मुदित भये सुनि रघुवर जानी । भयेउ लाभ बड गइ बडि हानी ॥
 हरपित हृदय मातु पहिं आये । मनहुँ अघ फिरि लोचन पाये ॥
 जाइ जननि पग नायेउ माथा । मनु रघुनन्दन जानकि-साथा ॥
 पूँछे मातु मलिन मुख देखी । लपन कही सत्र कथा त्रिसेखी ॥
 गई सहमि सुनि वचन कठोरा । मृगी देखि दब जनु चहुँ ओरा ॥
 तापन लखेउ भा अनरथ आजू । एहि सनेह बस करत अकाजू ॥
 माँगत विदा सभय सकुचाहीं । जाइसग, त्रिधि, कहहि किनाहीं ॥

दो०-समुक्ति सुमित्रा राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ ।

नृपसनेह लरि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
 तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता रामु सत्र भौंति सनेही ॥
 अबध तहाँ जहँ राम-निवासू । तहई दिवसु जहँ भानुप्रकासू ॥
 जौं पै सीय-रामु वन जाही । अबध तुम्हार काजु ऋछु नाहीं ॥
 गुरु पितु मातु वधु सुर साई । सेइअहि सकल प्रान की नाई ॥
 राम प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथ-रहित सया सब ही के ॥
 पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानिअहि राम के नाते ॥
 अस जिय जानि सग वन जाहू । लेहु तात जग जीवनु-लाहू ॥

दा०-भूरि भागभाजनु भयेहु मोहि समेत बलि जाउँ ।

जौं तुम्हरे मन छौंढि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ ॥

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघु-पति-भगतु जासु सुत होई ॥
 नतरु बाँक भलि, वादि विश्रानी- । रामविमुख सुत तें हित-हानी ॥
 तुम्हरेहि भाग रामु वन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
 सकल सुकृत कर बड फल एहू । राम सीय-पद सहज सनेहू ॥
 रागु रोपु इरिपा महु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ॥
 सकल प्रकार विकार निहाई । मन क्रम नचन करेहु सेवकाई ॥
 तुम्ह कहुँ वन सत्र भौंति सुपासू । सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
 जेहि न रामु वन लहहि कलेसू । सुत सोइ करहु इहै उपदेसू ॥

सो०-मातुचरन सिरु नाइ चले तुरत सकित हृदय ।

वागुर विषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भागवस ॥

स्फुट पद्य

करहुँक अत्र अवसर पाइ ।

मेरिअथौ सुधि छावनी फलु करुन कथा चलाई ॥

दोन सत्र अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ ।

नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी-दास कहाइ ॥

बूझिहैं 'सो है कौन' ? कहिबी नाम दसा जनाइ ।

सुनत रामरूपालु के मेरी विगरिअथौ वनि जाइ ॥

जानकि जगजननि जन की किए वचन-सहाइ ।

तरै 'तुलसीदास' भव तत्र नाथ गुनगन गाइ ॥

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।

हरिपद-विमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुक्ति सबेरो ॥

विद्युरे ससि रवि मन । नयननि तें पावत दुख बहुतेरो ।

भ्रमत अमित निसि दिवस गगन महुँ तहुँ रिपु राहु बडेरो ॥

जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।

तजे चरन अजहुँ न मिटत नित रहियो ताहु केरो ॥

छुटै न त्रिपति भजे विनु रघुपति स्मृति सदेह निरेरो ।

'तुलसीदास' सत्र आस छौडि-करि होहि राम कर चेरो ॥

करहुँ मन विस्वाम न मान्यो ।

निसि दिन भ्रमत त्रिसारि सहज मुख जहुँ-तहुँ इतिन तान्यो ॥

जद्यपि त्रिपय सँग महे दुसह दुख विषम जाल अरुभान्यो ।

तद्यपि न तजत मूढ़ ममतास जानत हूँ नहिँ जान्यो ॥

जनम अनेक किय नाना विधि करम-कीच चित सान्यो ।
 होइ न विमल त्रिवेक-नीर त्रिनु वेद पुरान बखान्यो ॥
 निज हित नाथ पिता गुरु हरि सौं हरषि हृदय नहि आन्यो ।
 'तुलसिदास' कय तृपा जाइ ? सर खनतहि जनम सिरान्यो ।

ऐसी मूढता या मन की ।

परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसरुन की ॥
 धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की ।
 नहि तहँ मीतलता न वारि पुनि हानि होत लोचन की ॥
 ज्यो गच कौंध त्रिलोकि सेन जड छाँह अपने तन की ।
 दूटत अति आतुर अहार बस छति त्रिसारि आनन की ॥
 कहँ। लौ नहौं कुचाल कृपनिधि जानत हौ गति मन की ।
 'तुलसिदास' प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥

केसव कहि न जाइ का कहिए ?

देखत तत्र रचना त्रिचित्र अति समुक्ति मनहिं मन रहिए ॥
 सून्य भोति पर चित्र, रग नहिं, तनु त्रिनु लिखा चितरे ।
 धोए मिटै न, मरै भीति दुख, पाइय यहि तनु हेरे ॥
 रत्रिकर-नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माहीं ।
 वदनहीन सो बसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥
 कोउ कह सत्य, मूठ रह कोऊ, जुगल प्रवल करि मानै ।
 'तुलसिदास' परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ॥

माधव ! अस तुम्हारि यह माया ।
 करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहीं जन्म लागि करहु न दाया ॥
 सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहीं आवै ।
 जेहि अनुभव विनु मोह जनित दारुन भय त्रिपति सतावै ॥
 ब्रह्म पियूप मधुर सीतल जौ पै मन सो रस पावै ।
 तौ कत मृगजल रूप त्रिषय कारन निसि वासर धावै ॥
 जेहिके भजन त्रिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै ।
 सपने परवस परचौ जागि देग्यत केहि जाइ निहोरै ?
 ज्ञान भगति साधन अनेक सत्र सत्य, भूठ कछु नाहीं ।
 'तुलसीदास' हरिकृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं ॥

जो पे रहनि राम सो नाहीं ।

तौ नर रर कूरर सूकर से जाय जियत जग माहीं ॥
 काम, क्रोध, मद, लोभ, नीद, भय, भूख, प्यास, सगही के ।
 मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय-पी के ॥
 सूर, सुजान, सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।
 विनु हरिभजन ईंकारुन के फल, तजत नहीं करुआई ॥
 कीरति, बुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने ।
 'तुलसी' प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने ॥

लाभ रहा मानुष तनु पाए ।

काय, वचन, मन सपनेहु करहुँक घटत न काज पराण ॥
 जौ सुर सुरपुर नरक गेह धन आवत विनहि घुटाए ।

मीरोंवाई

पद

(१)

बसो मोरे नैनन में नँदलाल ।
 मोहनी मूरति, साँवरी सूरति नैना बने त्रिसाल ।
 मोर-मुगद, मकराकृति कुडल अरुण तिलक दिये भाल ।
 अधर-सुधा-रस मुरली राजति उर वैजती माल ।
 छुद्र घटिका कतितट सोभित नूपुर-सन्द रमाल ।
 'मीरों' प्रभु सतन सुखदाई भगत-धछल गोपाल ॥

(२)

मन रे परसि हरि के चरण ।
 सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविव ज्वाला हरण ॥
 जिण चरण प्रह्लाद पहले इन्द्र - पदवी धरण ॥
 जिण चरण ध्रुव अटल कीने राखि अपनी सरण ॥
 जिण चरण ब्रह्माड भँट्यों नख सिख सिरी धरण ॥
 जिण चरण प्रभु परसि लीने तरी गोतम धरण ॥
 जिण चरण कालीनाग नाथ्यो गोप-लीला-करण ॥
 जिण चरण गोवरधन धरथो इन्द्र को प्रव हरण ॥
 दासी 'मीरों' लाल गिरधर अगम तारण तरण ॥

(३)

भज मन चरण-कँवल अग्निनासी ।
 जेताइ दीसै धरण-गगन धिच तेताइ सत्र उठ जासी ।
 इस देही का गरम न फरणा माटी ने मिल जासी ॥
 यो ससार चहर की बाजी साँभ पड-थॉ उठ जासी ।
 कहा भयो तीरथ त्रत कीने रहा लिये करवत कामी ?
 कहा भयो है भगवा पहर-थॉ घर तज भये सँन्यासी ?
 जोगी होइ जुगत नहिं जाणी उलट जनम फिर आसी ।
 अरज करौ अवला कर जोरे स्याम तुम्हारी दासी ।
 'मीरों' के प्रभु गिरवर नागर काटो जम की फाँसी ॥

(४)

या मोहन के मैं रूप लुभानी ।
 सुंदर बदन कमल दल लोचन पाँकी चितवन मँद मुसकानी ।
 जमना के नीरे तीरे धेन चरावै वसी मैं गावै मीठी बानी ।
 तन मन धन गिरधर परवारुँ चरण कँवल 'मीरों' लपटानी ॥

(५)

माई री मैं तो तीयो गोविन्दो मोल ।
 कोई कहै छानै कोई कहै चौडे लियो री बजता ढोल ।
 कोई कहै सुँहघो कोई सुँहघो लियो री तराजू तोल ।
 कोई कहै कारो कोई कहै गोरो लियो री अमोलक मोल ।
 या ही धूँ सत्र लोग जाणत है लियो री अँखी खोल ।
 'मीरों' कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ पूरव जनम कौ मोल ।

(११)

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल बना रे।
 विनि करताल परावज वाजै अणहद की ऋणकार रे।
 विनि सुर राग छतीसूँ गावै रोम-रोम रँग सार रे।
 सील सतोख की कैसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे।
 उडत गुलाल लाल भयो अनर वरसत रग अपार रे।
 घट के सत्र पट खोल दिये हैं लोक-लाज सत्र डार रे।
 होरी खेलि पीव घर आये सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
 'भीरों' के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल बलिहार रे।



केशवदास

हनुमानजी का लंका-गमन

[दोहा]

उदधि नाकपति-शत्रु को, उदित जानि बलवत ।
 अतरिक्त ही लक्ष्मि पद, अच्छ द्रुयो हनुमत ॥ १ ॥
 बीच गये सुरसा मिली, और सिहिका नारि ।
 लीलि लियो हनुमत तेहि, कढे उदर कहँ फारि ॥ २ ॥

[तारक छंद]

कछु राति गये करि दश दशा भी ।
 पुर मँफ चले वनराजि विलासी ॥
 जब हीं हनुमत चले तजि शका ।
 मग रोकि रही तिय है तत्र लका ॥ ३ ॥

हनुमान-लका संवाद

लका—कहि मोहिं उलधि चले तुम को हो ।
 अति सूक्ष्म रूप धरे मन मोहौ ॥ १ ॥
 पठये क्यहि कारण कौन चले हो ।
 सुर हो किधों कोऊ सुरेश भले हो ॥ ४ ॥

नुमान—हम वानर हैं रघुनाथ पठाये ।
 तिनकी तरुणी अवलोकन आये ॥

लका—हति मोहिं महामति भीतर जैये ।

नुमान—तरुणीहिं हते वनलों सुख पैये ॥ ५ ॥

१ लका—तुम मारेहि वै पुर पैठन पैहौ ।
 हठ कोटि करौ घरहौं फिरि जैहौ ॥
 हनुमत वली तेहि थापर मारी ।
 तजि देह भई तव ही वर नारी ॥ ६ ॥

[चौपाई]

लंका—धनदपुरी हौं रावण लीन्हो ।
 बहु विधि पापन के रस भीनी ॥
 चतुरानन चित चितिन कीन्हो ।
 वरु करुणा करि मोरुहँ दोन्हों ॥ ७ ॥
 जन दशकठ मिया हरि लैहैं ।
 हरि हनुमत विलोकन ऐहैं ॥
 जब वह तोहि हतै तजि शका ।
 तत्र प्रभु होइ विभीषण लका ॥ ८ ॥
 चलन लगो जन ही तत्र कीजो ।
 मृतक शरीरहि पायक दीजो ॥
 यह कहि जात भई वह नारी ।
 सत्र नगरी हनुमत निहारी ॥ ९ ॥

रावण-गयनागार

तत्र हरि रावण सोवत देग्यो ।
 १ मणिमय पलका वी छत्रि लेग्यो ॥
 तहँ तन्गी बहु भौतिन गावैं ।
 त्रिच-त्रिच श्रावण योन उजावैं ॥ १० ॥ १


मृतक चिता पर मानहु सोहैं ।
 चहुँ दिशि प्रेतपधू मन मोहैं ॥
 जहँ•जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो ।
 सिय त्रिन है सिगरो घर सूनो ॥ ११ ॥

[भुजगप्रयात छंद]

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं ।
 सुरी आसुरी वाँसुरी गीत गावैं ॥
 कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढावैं ।
 नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं ॥ १२ ॥
 पियै एक हाला शुद्धै एक माला ।
 वनो एक बाला नचै चित्रशाला ॥
 कहूँ कोकिला कोक की कारिका को ।
 पढावै सुआ लै शुकी शारिका को ॥ १३ ॥
 फिरथो देखिकै राजशाला सभा को ॥
 रह्यो रीम्किकै नाटिका की प्रभा को ॥
 फिरथो और चौहूँ चित शुद्ध गीता ।
 विलोकी भती सिंसिपा मूल सीता ॥ १४ ॥

मीता-दर्शन

धरे एक बेनी मिली मैल मारी ।
 मृणाली मनो परु सों काढि डारी ॥
 सदा रामनामै ररै दीन जानी ।
 चहुँ ओर हँ कृष्णसी दुखदानी ॥ १५ ॥

प्रसी बुद्धि-सी चित्त चित्तानि मानो ।
 किधौ जीभ दन्तावलो में बखानो ॥
 किधौ घेरिकै राहु नारीन लीनी ।
 कला चद्र की चारु पीयूष भीनी ॥ १६ ॥
 किधौ जीव की जोति मायान लीनी ।
 अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी ॥
 मनो ^{सिद्ध} सवर-छोन में काम-वामा । 
 हनुमान ऐसी लखी राम-रामा ॥ १७ ॥
 तहाँ देव-द्वेषी दशप्रोव आयो ।
 सुन्यो देवि सीता महादुख छायो ॥
 सवै अग लै अग ही में दुरायो ।
 अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो ॥ १८ ॥

रावण-सीता-संवाद

रावण—सुनो देवि मोपै कछ दृष्टि दीजै ।
 इतो शोच तो राम काजे न कीजै ॥
 बमें दडकारण्य देखै न कोऊ ।
 जो देखै महाबावरो होय सोऊ ॥ १९ ॥
 कृतनी ^{पुत्र} रुदाता ^{पुत्र} कुकन्याहि ^{पुत्र} चाहै ।
 हितू नम मुडीन ही को सदा है ॥
 अनाथै सुन्यो में अनाथानुसारी ।
 वसैं चित्त दही जटी मुडधारी ॥ २० ॥

तुम्हें देवि तृपै हितू ताहि मानै ।
 उदामीन तोसों सदा ताहि जानै ॥
 महानिर्गुणी नाम ताका न लीजै ।
 सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै ॥ २१ ॥
 अदेवी नृदेवीन की होहु रानी ।
 करै सेव बानी मघौनी मृडाली ॥
 लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं ।
 सुकेशी नचैं उर्वशी मान पावैं ॥ २२ ॥

[मालिनी छंद]

सीता—वृण विच दै बोली सीय गभीर बानी ।
 दशमुख शठ को तू कौन की राजधानी ॥
 दशरथ-सुत-द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै ।
 निशिचर प्रपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै ॥ २३ ॥
 अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी ।
 खल खर शर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी ॥
 निडकन घन घूरे भक्ति क्यों वाज जीवै ।
 शिव शिर शशिश्री को राहु कैसे सो छीवै ॥ २४ ॥
 उठि उठि शठ ह्या ते भागु तौलों अभागे ।
 मनु वचन निसर्पी सर्प जौलो न जागे ॥
 विकल मकुल देखौं आसु ही नाश तेरो ।
 निहट मृतक तोको रोप मारै न मेरो ॥ २५ ॥

[दोहा]

अवधि दर्ई द्वै मास की, कह्यो राक्षसिन बोलि ।
ज्यों समुमै ममुभाइयो, युक्ति-छुरी सों छोलि ॥ २६ ॥

मुद्रिका-प्रदान

[चामर छंद]

देखि देखिकै अशोक राजपुत्रिका कह्यो ।
देहि मोहिं आगि तैं जो अग आगि है रह्यो ॥
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दर्ई ।
आस पास देखिकै उठाय हाथ कै लई ॥ २७ ॥

[तोमर छंद]

जन लगी सियरी हाथ । यह आगि कैसी नाथ ॥
यह कह्यो लपि तन ताहि । मणि-जटित मुँदरो आहि ॥२८॥
जब बाँचि देख्यो नाउ । मन परयो सभ्रम भाउ ॥
आनाल ते रघुनाथ । यह धरो अपने हाथ ॥२९॥
विछुरी सो कौन उपाउ । केहि आनियो यहि ठाउ ॥
सुधि लहौं कौन उपाउ । अब काहि बूमन जाउ ॥३०॥
चहुँ ओर चितै सत्रास । अगलोकियो आकास ॥
तहँ शाख बैठो नीठि । तत्र परयो वानर डीठि ॥३१॥

सीता-हनुमान सवाद

तत्र कह्यो को तू आहि । सुर असुर मोतन चाहि ॥
कै यत्त पत्त विरूप । दशकठ वानर रूप ॥

कहि आपनो तू भेद । न तु चित्त उपजत रेद ॥
 कहि वेगि वानर पाप । न तु तोहिं देहौं शाप ॥
 हरि वृत्त, शाखा भूमि । कपि उतरि आयो भूमि ॥३२॥

[पद्धटिका छंद]

कर जोरि कयो हौं पवन पृत ।
 जिय जननि जानु रघुनाथ दूत ॥
 रघुनाथ कोन दशरथ नद ।
 दशरथ कौन अजुतनय चद ॥ ३३ ॥
 केहि कारण पठये यहि निकेत ।
 निज देन लेन मदेश हेत ॥
 गुण रूप शील शोभा सुभाउ ।
 कछु रघुपति के लक्षण वंताउ ॥ ३४ ॥
 अति यदपि सुमित्रा नद भक्त ।
 अति सेवक है अति शूर शक्त ॥
 अरु यदपि अनुज तीन्यो समान ॥
 पै तदपि भरत भावन निदान ॥ ३५ ॥
 ज्या नारायण-उर श्री बसति ।
 त्यो रघुपति उर कछु द्युति लसति ॥
 जग जितने हें सत्र भूमि भूप ॥
 सुर असुर न पूजैं राम रूप ॥ ३६ ॥

[निशिपालिका छंद]

गीता—मोहि परतीति यहि भौंति नहि आवई ।

प्रीति कहि धों सुनर वानरनि क्यो भई ॥
 वात सत्र वरिण परतीति हरि त्यों दई ।
 आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥ ३७ ॥

[दोहा]

आँसु वरपि हियरे हरपि, सीता सुखद सुभाइ ।
 निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, वरणति है बहु भाइ ॥ ३८ ॥

मुद्रिका-वर्णन

[पद्यटिका छंद]

यह सूरकिरण तम दुखहारि ।
 शशिकला किधों उर शोतकारि ॥
 कल कीरति सी शुभ सहित नाम ।
 कै राज्यश्री यह तजो राम ॥ ३९ ॥
 कै नारायण उर सम लसति ।
 शुभ अकन ऊपर श्री वसति ॥
 वर विद्या-सी आनद-दानि ।
 युत अष्टापद मनु शिवा मानि ॥ ४० ॥
 जनु माया अचर सहित देखि ।
 कै पत्नी निश्चयदानि लेखि ॥
 प्रिय प्रतीहारनी-मी निहारि ।
 श्रीरामो - जय उच्चारकारि ॥ ४१ ॥

प्रिय पठई मानौ सरि सुजान ।

जगभूषण को भूषण निधान ॥

निजु आई हमको सीस देन ।

यह किधों हमारो मरम लेन ॥ ४२ ॥

[दोहा]

सुरदा शिरदा अर्थदा, यशदा रसदातारि ।

रामचद्र की मुद्रिका, किधों परम गुरु नारि ॥ ४३ ॥

बहु वरणा सहज प्रिया, तम गुनहरा प्रमान ।

जग मारग दरशावनी, सूरज किरण-समान ॥ ४४ ॥

श्रीपुर मे वन मध्य हों, तू मग करी अनीति ।

कहि मुँदरी अब तियन की, को करि है परतीति ॥ ४५ ॥

[पद्धटिका छंद]

कहि कुशल मुद्रिके रामगात ।

पुनि लक्ष्मण सहित समान तात ॥

यह उत्तर देति न बुद्धिवत ।

केहि कारण धों हनुमत सत ॥ ४६ ॥

[दोहा]

गान—तुम पूँछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम ।

ककन की पदवी दर्ई, तुम निन याकहँ राम ॥ ४७ ॥

एक रक मारि क्यों बडो कलक लीजई ।
 बूँद सोरिगो कहा महासमुद्र छीजई ॥ ५८ ॥

तूल तेल बोरि-बोरि जोरि-जोरि वाससी ।
 लैं अपार रार ऊन दून सूत सां कसी ॥
 पूछ पौनपूत की सँवारि वारि दी जहीं ।
 अग को घटाइकै उडाइ जात भो तहीं ॥ ५९ ॥

[चचरी छंद]

धामे धामनि आगि को बहु ज्वाल-माल प्रिराजहीं ।
 पौन के मरुमोर से भँकरी भरोखन भ्राजहीं ॥
 वाजि वारण शारिका शुक मोर जोरन भाजहीं ।
 छुद्र ज्यों विपदाहि आवत छोडि जात न लाजहीं ॥ ६० ॥

लंका-दाह

[भुजगप्रयात छंद]

जटी अग्निज्वाला अटा सेत हैं ज्यो ।
 शरत्काल के मेघ सध्या समै ज्यों ॥
 लगी ज्वाल धूमावलो नील राजें ।
 मनो स्वर्ण की किंकिर्णी नाग साजें ॥ ६१ ॥
 कहुँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढे ।
 मनो ईश रोपाग्नि में काम डाढे ॥

कहूँ कामिनी ज्वाल-भालानि भोरें ।
 तजैं लाल सारी अलकार तोरें ॥ ६२ ॥
 कहूँ भौन राते रचै धूम छार्हीं ।
 शशी सूर मानों लसैं मेघ माहीं ॥
 जरै शखशाला मिली गधमाला ।
 मलै अद्रि मानौ लगी दाव ज्वाला ॥ ६३ ॥
 चली भागि चौहूँ दिशा राजरानी ।
 मिली ज्वाल-माला फिरै दुखदानी ॥
 मनो ईश वानावली लाल लोलैं ।
 सबै दैत्यजायान के सग डोलैं ॥ ६४ ॥

[सपैया]

लक लगाइ दई हनुमत विमान बचे अति उच्चरुखी है ।
 पावक मे उचटैं बहुधा मनि रानी रटैं पानी पानी दुरखी है ॥
 कचन को पधिल्यो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी है ।
 गग हजारमुखी गुनि 'केशो' गिरा मिली मानौ अपारमुखी है ॥ ६५ ॥

[दोहा]

हनुमत लाइ लक सत्र, बच्यो विभीषण धाम ।
 ॥ ज्यो अरुणोदय बेर में, पकज पूरव याम ॥ ६६ ॥

[सयुता छंद]

हनुमत लक लगाइकै । पुनि पूँछ सिंधु बुझाइकै ॥
 शुभ देख सीतहि पाँ परे । मनि पाय आनंद जी मरे ॥ ६७ ॥

रघुनाथ पै जत्र ही गये । उठि अक लावन को भये ॥
प्रभु मैं कहा करणी करी । शिर पाय की धरणी धरी ॥६८॥

[दोहा]

चिंतामणि सी मणि दर्ई, रघुपति कर हनुमत ।
सीताजू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनत ॥६९॥

सीता-संदेश

[घनाक्षरी]

भौरनी ज्यों भ्रमति रहति वन-वीथिकानि,
हसिनी ज्यो मृदुल मृणालिका चहति है ।
हरिणी ज्यों हँरति न केशरी के काननहिं,
केका सुनि व्याती ज्यो बिलानहीं चहति है ।
पीउ-पीउ रटत रहति चित चातकी ज्यों,
चद चितै चकई ज्यो चुप है रहति है ।
सुनहु नृपति राम विरह तिहारे ऐसी,
सूरतिन सीताजू को मूरति गहति है ॥ ७० ॥

[दोहा]

श्रीनृमिह प्रह्लाद भी, वेद जो गावत गाथ ।
गये मास दिन आशु ही, भूँठी है नथ ॥ ७१ ॥

[दडक]

राम—साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दु स हरि,
और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ ।

वानर नहीं हौ तुम मेरे बाण रोप सम,
 बलीमुख शूर बली मुख निजु गाये हौ ।
 शास्त्रामृग नहीं बुद्धि बलन के शास्त्रा मृग,
 कैर्धा वेद शास्त्रामृग 'केशव' को भाये हौ ।
 साधु हनुमत बलवत यशवत तुम,
 गये एक काज को अनेक करि आये हौ ॥ ७२ ॥

[तोमर छंद]

नुमान—गइ मुद्रिका लै पार । मनि मोहिं ल्याई वार ॥
 कह करयो मैं बलरक । अतिमृतक जारी लक ॥ ७३ ॥



रसखान

प्रेमवाटिका

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय ।
 जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥ १ ॥
 प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर-सरिस बखान ।
 जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नहिं 'रसखान' ॥ २ ॥
 प्रेम-वारुनी ध्यानिकै, बरुन भए जलधीस ।
 प्रेमहिं तें विष-पान करि, पूजे जात गिरीस ॥ ३ ॥
 प्रेमरूप दर्पन अहो, रचै अजुयो खेल ।
 यामें अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमोल ॥ ४ ॥
 कमलतनु सों छीन अरु, कठिन खड्ग की धार ।
 अति मूधो टेढो बहुरि, प्रेमपथ अनिवार ॥ ५ ॥
 लोक-वेद-मरजाद सब, लाज काज मदेह ।
 देत बहाए प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह ॥ ६ ॥
 कबहुँ न जा पथ भ्रम-तिमिर, रहै सदा सुगचद ।
 दिन दिन वाढत ही रहै, होत कबहुँ नहि मद ॥ ७ ॥
 भले बृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय ।
 विना प्रेम फीको सबै, कोटिन किए उपाय ॥ ८ ॥
 श्रुति पुरान आगम स्मृतिहि, प्रेम सबहिं को सार ।
 प्रेम विना नहिं उपज हिय, प्रेम-बीज अँकुवार ॥ ९ ॥

ज्ञान, कर्मऽरु उपासना, सत्र अहमिति को मूल ।
 दृढ निश्चय नहि होत विन, किए प्रेम अनुकूल ॥ १० ॥
 शास्त्रन पढि पढित भए, कै मौलवी कुरान ।
 जुपै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो 'रसदान' ॥ ११ ॥
 काम क्रोध मद मोह भय, लोभ द्रोह मात्सर्य ।
 इन सगही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥ १२ ॥
 त्रिनु गुन जोवन रूप धन, विनु स्वारथ हित जानि ।
 शुद्ध, कामना तें रहित, प्रेम सकल-रस-दानि ॥ १३ ॥
 अति सूक्ष्म कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर ।
 प्रेम कठिन सवतें सदा, नित इकरस भरपूर ॥ १४ ॥
 जग में सत्र जान्यौ परै, अरु सत्र कहै कहाय ।
 पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥ १५ ॥
 जेहि त्रिनु जाने कछुहि नहिं, जान्यो जात प्रिसेस ।
 सोइ प्रेम, जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेस ॥ १६ ॥
 मित्र कटात्र सुगन्धु सुत, इनमे सहज सनेह ।
 शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ-कथा सप्रिसेह ॥ १७ ॥
 इरुअगी त्रिनु कारनहिं, इकरस सदा समान ।
 गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥ १८ ॥
 डरें सदा, चाहै न कछु, सहै सत्रै जा हाय ।
 रहै एकरस चाहिकै, प्रेम बखातो सोय ॥ १९ ॥
 प्रेम प्रेम सत्र कोड कहै, कठिन प्रेम की फौंस ।
 प्रान तरफि निकरें नहीं, केवल चलत उसौंस ॥ २० ॥

प्रेम हरी को रूप है, त्यो हरि प्रेमसरूप ।
 एक होइ द्वै यो लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप ॥ २१ ॥
 ज्ञान ध्यान विद्या मती, मत विश्वास विवेक ।
 बिना प्रेम सत्र धूर है, अग जग एक अनेक ॥ २२ ॥
 प्रेम-फाँस में फँसि मरै, सोई जिए सदाहिं ।
 प्रेममरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥ २३ ॥
 जग में सत्रतें अतिक अति, ममता तनहिं लखाय ।
 पै या तनहूँ तें अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥ २४ ॥
 जेहि पाए बैकुण्ठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि ।
 सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥ २५ ॥
 कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार ।
 नेजा भाला तीर कोउ—कहत अनोखी ढार ॥ २६ ॥
 पै मिठास या मार के, रोम रोम भरपूर ।
 भरत जियै मुक्तो थिरै, वनै सु चकनाचूर ॥ २७ ॥
 हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम - आधीन ।
 याही तें हरि आपुही, याहि बडप्पन दीन ॥ २८ ॥
 वेद-मूल सत्र धर्म यह, कहै सबै श्रुतिसार ।
 परमधर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार ॥ २९ ॥
 जदपि जसोदानद अरु, ग्वालवाल सब धन्य ।
 पै या जग में प्रेम को, गोपी भई अनन्य ॥ ३० ॥
 श्रवन कीरतन दरसनहिं, जो उपजत सोइ प्रेम ।
 शुद्धाशुद्ध विभेद तें, द्वैविध ताके नेम ॥ ३१ ॥

स्वारथ - मूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभावऽनुकूल ।
 नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूत ॥ ३२ ॥
 रसमय स्वाभाविक निना-म्वारथ अचल महान ।
 सदा एकरस शुद्ध सोइ, प्रेम अहै 'रसखान' ॥ ३३ ॥

स्फुट पद्य

(१)

मानुष हों तो वहीं 'रसखानि' वसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
 जो पशु हौ तौ कहा बस मेरो चरों नित नन्द की धेनु भँभारन ॥
 पाहन हों तौ वही गिरि को जो धरथो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
 जो रग हों तौ बसेरो करों मिलि कालिंदी कूल कदम की डारन ॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारों ।
 आठहुँ सिद्धि नमो निधि को सुख नद की गाइ चराइ बिसारों ॥
 'रसखानि' करों इन आरिखिन सों ब्रज के वन बाग वड़ाग निहारों ।
 कोटि करौ कलधौत के धाम करीत के कुजब ऊपर वारों ॥

(३)

गावें गुनी गनिका गधर्य औ सारद सेस मयै गुन गावत ।
 नाम अनत गनत गनस ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार ७ पावत ॥
 जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरतर जाहि सगाधि लगावत ।
 ताहि अहीर की छोहरिया छदिया भरि छाद्य पै नाच नचावत ॥

(४)

धूर भरे अति शोभित स्याम जू तैसी वनी सिर सुदर चोटी ।
 खेलत खात फिरैं अँगना पग पैजनी वाजती पीरी कछोटी ॥
 वा छवि को 'रसखानि' विलोकत वारत काम कला निज कोटी ।
 काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी ॥

(५)

कल कानन कुडल मोरपखा उर पै वनमाल विराजति है ।
 मुरली कर में अधरा मुसकानि तरंग महाछवि छाजति है ॥
 'रसखानि' लखै तन पीत पटा सत दामिनी की दुति लाजति है ।
 वह बाँसुरी की धुनि कान परें कुलकानि हियो तजि भाजति है ॥

(६)

ब्रह्म मैं हूँदथो पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन ।
 देग्यो सुन्यो कअहूँ न कितू वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ॥
 टेरत हेरत हारि परथो 'रसखानि' वतायो न लोग लुगायन ।
 देखो दुरो वह छुजकुटीर में बैठो पलोटत राधिका-पायन ॥

(७)

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरतर गावैं ।
 जाहि अनादि अनत अखड अछेद अभेद सुवेद वतावैं ॥
 नारद से सुक व्यास रहैं पधि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
 ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

(८)

मकराकृत कुडल गुज की माल वे लाल लसैं पग पाँवरिया ।
 बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयो भावती भाँवरिया ॥
 'रसखानि' त्रिलोक्त ही सिगरी भई वावरिया ब्रज डाँवरिया ।
 सजनी इहिं गोकुल में विप सो वगरायो है नद के साँवरिया ॥

(९)

मो मन मोहन कों मिलिकै सवहीं मुसकानि दिखाय दई ।
 वह मोहनी मूरति रूपमयी सनही चितई तन हौं चितई ॥
 उन तौ अपने अपने घर की 'रसखानि' भली त्रिधि राह लई ।
 कछु मोहि को पाप पर्यो पल में पग पावत पौरि पहार भई ॥

(१०)

छीर जो चाहत चीर गई ए जु लेहु न केतक छीर अचैहौ ।
 चाखन के मिस माखन माँगत खाहु न माखन केतक सैहौ ॥
 जानत हौं जिय की 'रसखानि' सु काहे को एतक वात बढैहो ।
 गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नैकु न पैहौ ॥

(११)

प्राण वही जु रहैं रिक्ति वापर रूप वही जिहिं वाहि रिमायो ।
 सीस वही जिन वे परसे पद अक वही जिन वा परसायो ॥
 दूध वही जु दुहायो री वाही दही सु सही जो वही ढरकायो ।
 और कहाँ लौं कहाँ 'रसखानि' री भाग वही जु वही मनभायो ॥

(१२)

सपति सों सकुचाइ कुनेरहि रूप सों दीनी चिनौती अनगहि ।
 भोग कै कै ललचाइ परदर जोग कै गग कै लइ धरि मगहि ॥
 ऐसे भये तो कहा 'रसखानि' रसै रसना जो जु मुक्ति तरगहि ।
 दै चित ताके न रग रच्यौ जु रख्यो रचि राधिका रानी के रगहि ॥

(१३)

द्वैपदी औ गनिका गज गोध अजामिल सों कियो सो न निहारो ।
 गौतम-गेहिनी कैसी तरी प्रह्लाद को कैसे हरयो दुख भारो ॥
 काहे कों सोच करै 'रसखानि' कहा करिहैं रविन्द प्रचारो ।
 ता रन जा रन राखिए मारन चारनहारो सो राखनहारो ॥

(१४)

यह देख धतूरे के पात चवात औ गात सों धूली लगावत हैं ।
 चहुँ ओर जटा अँटकें लटकें फनि सँक फनी फहरावत हैं ॥
 'रसखानि' जेई चितवै चित दै तिनके दुख दुद भजावत हैं ।
 गजखाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत हैं ॥

(१५)

कहा 'रसखानि' सुखसपति सुमार कहा

कहा तन जोगी है लगाए अग छार को ।

कहा साधे पचानल कहा सोए बीच नल

कहा जीत लाए राज सिंधु आर पार को ॥

जप चार चार तप मजय वचार व्रत
 तीरथ हजार अरे वृक्षत लवार को ।
 कोन्हो नहीं प्यार नहीं सेयो दरवार चित
 चाह्यो न निहारो जो पे नद के कुमार को ॥

(१६)

कचन के मदिरनि दीठ ठहरात नाहि
 सदा दीपमाल लाल मानिक उजारै सौं ।
 और प्रभुताई अत्र कहाँ लौ वरानों प्रति-
 हारन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं ॥
 गगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ वेद
 बीस बार गाइ ध्यान कीजत सवारे सौं ।
 ऐसे ही भए तो नर कहा 'रमयानि' जो पै
 चित दे न कीनी प्रात पीतपटवारे सौं ॥



विहारीलाल

दोहे

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ ।
 जा तन की भाँई परें स्यामु हरित दुति होइ ॥ १ ॥
 नीकी दर्ई अनारुनी फीकी परी गुहारि ।
 तज्यौ मनौ तारन विरदु वारक वारनु तारि ॥ २ ॥
 जम-करि मुँह तरहरि परचो इहि धरहरि चित लाउ ।
 विषय-वृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ॥ ३ ॥
 दीरघ साँस न लेहि दुख सुख साईहि न भूलि ।
 दर्ई दर्ई क्यो करतु है दर्ई दर्ई सु कचूलि ॥ ४ ॥
 या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहि कोइ ।
 ज्यों ज्यों बूडै स्याम रँग त्यों त्यों उज्जलु होइ ॥ ५ ॥
 जपमाला व्यापा तिलक सरै न एकौ कामु ।
 मन काँचै नाचै वृथा साँचै, राँचै रामु ॥ ६ ॥
 बडे न हूजै गुननु विनु विरद-बडाई पाइ ।
 कहत धतूरे सौं कनकु गहनौ गढचो न जाइ ॥ ७ ॥
 कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ ।
 उहिँ खाँए वौराइ इहिँ पाए हीं वौराइ ॥ ८ ॥
 जिन दिन देगे वे कुसुम गई सु धीति बहार ।
 अत्र अलि, रही गुलाब में अपत कँटीली डार ॥ ९ ॥

सीस मुकट कटि काछनी कर मुरली उर माल ।
 इहि वानर मो मन सदा तसौ बिहारीलाल ॥ १० ॥
 नर की अरु नल-नीर की गति कैं करि जाइ ।
 जेतौ नीचौ है चलै तेतौ ऊँचौ जाइ ॥ ११ ॥
 बढत नढत सपति सलिलु मन-सरोजु बढि जाइ ।
 घटत - घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ १२ ॥
 अति अगाधु अति औधरौ नदी कूपु सरु वाइ ।
 सो तारौ सागरु जहाँ जाकी प्यास बुझाइ ॥ १३ ॥
 अधर धरत हरि कैं परत ओठ डीठि पट जोति ।
 हरित बाँस की बाँसुरी इद्रधनुष रंग होति ॥ १४ ॥
 को कहि सकै बडेनु सौँ लरै बडी यौ भूल ।
 दीने दई गुलाम की इन डारनु बे फूल ॥ १५ ॥
 समै समै सुदर सनै रूपु कुरुपु न कोइ ।
 मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ ॥ १६ ॥
 या भव - पारावार कौँ उलँधि पार को जाइ ।
 तिय-छत्रि-छाया प्राहिनी प्रहै बीच हीं आइ ॥ १७ ॥
 इहाँ आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाम कैं मूल ।
 हैं हैं फेरि बसत अतु इन डारनु बे फूल ॥ १८ ॥
 कहलाने एकत तसत अहि मयूर मृग वाघ ।
 जगतु तपोवन सौँ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥ १९ ॥
 नीच हियै हुलसे रहै गहै गेद के पोत ।
 ज्यों ज्यों माथे मारियत त्यों त्यों ऊँचे होत ॥ २० ॥

बुरौ बुराई जौ तजै तौ चितु खरौ डरातु ।
 ज्यों निकलकु मयकु लखि गनै लोग उतपातु ॥ २१ ॥
 ओछे बडे न है सकै लगी सतराँ-है मैन । खैन
 दीरघ होहि न नैक हूँ फारि निहारै नैन ॥ २२ ॥
 कर लै सूँधि सराहि हूँ रहे सवै गहि मौनु ।
 गधो, गध गुलान कौ गँवई गाहकु कौनु ॥ २३ ॥
 इन दुखिया अँखियानु कौँ सुखु सिरब्यौई नाहि ।
 देखै वनै न देखतै अनदेखै अकुलाहि ॥ २४ ॥
 को छूट्यो इहि जाल परि कत कुरग अकुलात ।
 ज्यों ज्यों सुरभि भज्यौ चहत त्यौँ त्यौँ उरकत जात ॥ २५ ॥
 चिरजीवौ जोरो, जुरै क्यों न सनेह गँभीर ।
 को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के वीर ॥ २६ ॥
 ज्यों हैहौँ त्यौँ होउँगौँ हौँ हरि अपनी चाल ।
 हठु न करौ अति कठिनु है मो तारिवौ गोपाल ॥ २७ ॥



भूपण

काली कपर्दिनी

जै जयति, जै आदि सकृति, जै कालि कपर्दिनि,
 जै मधुकैटभ-छलनि, देवि, जै महिष-विमर्दिनि ।
 जै चमुड जै चड - मुड - भडासुर - राडिनि,
 जै सुरक्त जै रक्तगीज - विड्वाल विहडिनि ।
 जै-जै निसुभ सुभइलनि, भनि 'भूपन' जै जै भननि,
 सरजा समत्थ सिरराज कहँ, देहि बिजै, जै जग-जननि ॥

छत्रसाल की तलवार

निरुसत न्यान तें मयूखें प्रलैभानु की-सी,
 फारें तमतोम से गयन्दन के जाल को ।
 लागति लपटि कँठ वैरिन के नागिनी-सी,
 रुद्रहि रिभावै दै दै मुडन की माल को ॥
 लाल द्विदिपाल छत्रसाल महागडु धली,
 कहौं तौं घरान करौं तेरी करवाल को ।
 प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
 कालिका-सी किलकि क्लेऊ देती काल को ॥

शिवाजी की प्रशंसा

(१)

इंद्र जिमि जंभ पर, वाडव सु अम पर,
 रावण सदभ पर रघुकुल-राज है ।
 पौन वारिवाह पर, समु रतिनाह पर,
 ब्यों सहस्रवाह पर राम द्विजराज है ॥
 दावा द्रुम-दड पर, चीता मृग-मुड पर,
 'भूपन' वितुड पर जैसे मृगराज है ।
 तेज तम अस पर, कान्ह जिमि कस पर,
 त्यों मलिच्छ वस पर सेर सिवराज है ॥

(२)

एक कहैं कलपद्रुम है, इमि पूरत है सबकी चित-चाहै,
 एक कहैं अरवतार मनोज को, यों तन में अति सुदरता है ।
 'भूपन' एक कहैं महि-इन्दु यों, राज विराजत वाढथो महा है,
 एक कहैं नरसिंह है सगर, एक कहैं नरसिंह सिवा है ॥

(३)

सो कर सो दिति द्याजत दान है, दानदू सों अति तो कर छाजै ।
 तैं ही गुनी की बडाई सजै, अरु तेरी बडाई गुनी संग साजै ॥
 'भूपन' तोहि सों राज विराजत, राज सों तू सिवराज, विराजै ।
 सो बल सो गढ-कोट गजैं, अरु तू गढ कोटन के बल गाजै ॥

(४)

इद्र निज हेरत फिरत गज-इद्र अरु
 इद्र को अनुज हेरै दुगधिजश्रीस को ।
 'भूपन' भनत सुरसरिता को हस हेरे
 विधि हेर हस को चकोर रजनीस को ॥
 साहित्तनै सिवराज करनी करी है तैं जु
 होत है अचभो देव कोटियो तैंतीस को ।
 पावत न हेरे तेरे जस में हिराने निज
 गिरि को गिरीस हेरें गिरिजा गिरीस को ॥

(५)

चित्त अनचैन, आँसू उमगत नैन, देखि
 वीवी कहै बैन, मियाँ, कहियत काहिनै ?
 'भूपन' भनत वृष्के आए दरवार ते
 कँपत वार-वार क्यों सँभार तन नाहिनै ?
 सीनो धकधकत, पसीनो आयो देह सय
 हीनो भयो रूप न चितौत बाँँ-दाहिनै ।
 सिवाजी की सक मानि गए हौ सुखाय, तुम्हें
 जानियत दम्पिन को सूवा करो साहिनै ।

(६)

साजि चतुरग वीररग में तुरग चढि,
 सरजा सिवाजी जग जीतन चलत है ।

‘भूपन’ भनत नाद विहद नगारन के,
 नदी नद मद गव्वरन के रलत है ॥
 ऐल फैल सैल भैल खलक मे गैल-गैल,
 गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है ।
 तारा-सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि,
 थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥

(७)

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
 कीन्ही सिवराज वीर अकह कहानियाँ ।
 ‘भूपन’ भनत तिहुँ लोक में तिहारी धाक,
 दिह्ली औ विलाइति सकल विललानियाँ ॥
 आगरे अगारन है फाँदती कगारन छुवै,
 वॉधती न वारन, मुखन कुम्हिलानियाँ ।
 कीवी कहै कहा औ गरीजी गहे भागी जाहिं,
 वीवी गहै सूयनी सु नीवी गहे रानियाँ ॥

(८)

केतिक देस दल्यो दल के बल, दच्छिन चगुल चापिके चाख्यो ।
 रूप-गुमान हरयो गुजरात को, सूरति को रस चूसिके नाख्यो ॥
 पंजन पैलि मलिच्छ मल्यो सत्र, सोइ बच्यो, जेहि दीन है भारयो ।
 जो रंग है मियगज बली, जेहि नौरंग में रंग एक न गख्यो ॥

(९)

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार,
 दिल्ली दहसति चितै चाह गरकति है ।
 बिलरि वन बिलर्यात रिजैपूर - पति,
 फिरत फिरगिन की नारी फरकति है ॥
 थरथर काँपत कुतुबसाहि गोलकुँडा,
 हहरि हवस - भूप भोर भरकति है ॥
 राजा सिनराज के नगारन की धाक सुनि,
 केते पातसाहन की छाती दरकति है ॥

(१०)

वेद राखे विदित पुरान राखे सारजुत,
 राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर में ।
 हिन्दुन की चोटी, रोटी राखि है सिपाहिन की,
 काँधे में जनेउ राख्यो, माला राखी गर में ॥
 मीडि राखे मुगुल, मरोरि राखे पातसाह,
 धैरी पीसि राखे, वरदान राख्यो कर में ।
 राजन की हह राखी तेग-बल सिवराज,
 देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घर में ॥



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

गंगा-गरिमा

नम उज्जल जलधार, हार हीरक - सी सोहति ।
 विच-त्रिच छहरति वृँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति ॥
 लोल लहर लहि पवन एक पैँ इक इमि आवत ।
 जिमि नर गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत ॥
 सुभ - स्वर्ग - सोपान - सरिस सत्रके मन भावत ।
 दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
 श्रीहरिपद - नस - चद्रकात - मनि - द्रवित सुधारस ।
 ब्रह्म - कमडल - मडन, भव - खडन सुर - सरवस ॥
 शिव सिर-मालति - माल, भगीरथ - नृपति - पुन्य - फल ।
 ऐरावत - गज गिरि-पति - हिम - नग - कठहार कल ॥
 सगर - सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण ।
 अगिनित धारा रूप धारि सागर सचारण ॥
 कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई ।
 सपने हू नहि 'तजी, रही अरुम लपटाई ॥
 कहँ वँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
 कहँ छतरी, कहँ मढी, बढी मन मोहत जोहत ॥
 धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका ।
 घहरत घटा धुनि धमकत धौँसा धरि साफा ॥

मधुरी नौवत प्रजत, कहूँ नारी नर गावत ।
 वेद पढत कहूँ द्विज, कहूँ जोगी ध्यान लगावत ॥
 कहूँ सुदरी नहात वारि कर - जुगल उधारत ।
 जुग अबुज मिलि मुक्तगुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
 धोवत सुदरि वदन करन अति ही छनि पावत ।
 वारिधि नाते ससि कलक मनु कमल मिटावत ॥
 सुदरि सखि मुरा नीर मध्य इमि सुदर सोहत ।
 कमलवेति लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
 दीठि जहाँ जहँ जात रहत तितही ठहराई ।
 गगा छवि 'हरिचद' कछ् परनी नहिं जाई ॥

पावस-मसान

चपला की चमक चहूँघा सों लगाई चिता
 चिनगी चिलक पटनीजना चलायो है ।
 हेती बगमाल स्याम धात्र सु भूमि कारी
 वीरवधू लहूँचूँद भुज लपटायो है ॥
 'हरीचद' नीर धार आँसू-सी परत जहाँ
 दादुर को सोर गेर दुखिन मचायो है ।
 दादन प्रियोग दुखियान को मरे हूँ यह
 देखो पापी पावस मसान धनि आयो है ॥

नारद की वीणा

(१)

पिंग जटा को भार सीस पै सुन्दर सोहत ।
 गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत ॥
 कटि मृगपति को चरम चरन मे घुँघरू धारत ।
 नारायण गोविन्द कृष्ण यह नाम उचारत ॥

लै वीणा कर वादन करत तान सात सुर सो भरत ।
 जग अघ छिन में हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भवजल तरत ॥

(२)

जुग तूँन की वीन परम सोभित मनभाई ।
 लय अरु सुर की मनहुँ जुगल गठरी लटकाई ॥
 आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहैं ।
 कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग-मन मोहै ॥

कै श्रीराधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट ।
 यह अगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो हूँ अघट ॥

(३)

मनु तीरथमय कृष्णचरित की काँवरि लीने ।
 कै भूगोल खगोल दोउ कर अमलक कीने ॥
 जग बुधि तौलन हेत मनहुँ यह तुला बनाई ।
 भक्ति-मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई ॥

मनु गावन सों श्रीराग के वीणा हूँ फलती भई ।
 कै राग सिधु के तरन हित, यह दोऊ तूँवी लई ॥

(४)

ब्रह्म-जीव, निरगुन-सगुन, द्वैताद्वैत विचार ।
 नित्य अनित्य विवाद के, द्वै तूँजा निरधार ॥
 जो इक तूँवा लै कढै, सो बैरागी होय ।
 क्यो नहि ये सवसो बढै, लै तूँवा कर दोय ॥

वह छवि

नैना वह छवि नाहिन भूले ।
 दया-भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले ॥
 वह आवनि वह हँसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरें ।
 वह बतरानि मुरनि हरि की वह बह देखन चहुँ कोरें ॥
 वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे ।
 वह धीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे ॥
 परवस भए फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे ।
 हरि-ससि मुख ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारे ॥

यमुना-वर्णन

(१)

तरनि-वनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए ।
 मुके फून सौं जन परमन-हित मनहुँ सुहाए ॥

किधौं मुकुर में लखत उम्ककि सब निज-निज सोभा ।

कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥

मनु आतप बारन तीर कों सिमिटि सबै छाए रहत ।

कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥

(२)

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भौतिन ।

कहूँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लागि रहि पौतिन ॥

मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा ।

कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥

कै करिकै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई ।

कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥

(३)

कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।

कै मुरत करि बहु भृगन मिस अस्तुति उच्चारत ॥

कै ब्रज तियगन-वदन-कमल की भूलकत भाई ।

कै ब्रज हरिपद-परस हेत कमला बहु आई ॥

कै सात्त्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत ।

कै जानि लच्छमी भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥

(४)

तिनपे जेहि छिन चद-जोति राका निमि आवति ।

जल में मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति ॥

होत मुकुरमय सत्रै तत्रै उज्जल इक ओभा ।
 तन मन नैन जुडावत देखि सुदर सो सोभा ॥
 सो को कनि जो छनि कहि सकै ता छन जमुना नीर की ।
 मिलि अबनि और अवर रहत छवि इन्सी नभ-तीर की ॥

(५)

परत चद्र-प्रतिमिंय कहुँ जल मधि चमकायो ।
 लोल लहर लहि नचत कनहुँ सोई मन भायो ॥
 मनु हरि-दरसन हेत चद जल बसत सुहायो ।
 कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छनि छायो ॥
 कै रास-रमन में हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है ।
 कै जल-उर हरि मूरति बसत, ता-प्रतिमिंय लखात है ॥

(६)

कनहुँ होत सत चद कनहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
 पवन गवन बस मिंय रूप जल में बहु साजत ॥
 मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै ।
 कै तरंग की डोर हिंडोरन करत फलोलै ॥
 कै बालगुडी नभ में उडी सोहत इत-उत धारती ।
 कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज-रमनी जल आपती ॥

(७)

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
 कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अपिकल ॥

कै कालिंदी नीर तरंग जितो उपजावत ।

तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥

कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार-जल उच्छरत ।

कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि वैठत कसरत करत ॥

(८)

कूजत कहुँ कलहस कहुँ मज्जत पारावत ।

कहुँ कारडव उडत कहुँ जल-कुम्कुट धावत ॥

चक्रवाक कहुँ वसत कहुँ वक ध्यान लगावत ।

सुरु-पिक जल कहुँ पियत कहुँ भ्रमरावलि गावत ॥

कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर विविध पच्छी करत ।

जलपान न्हान करि सुरभ भरे तट सोभा सत्र जिय धरत ॥

(९)

कहुँ वालुका विमल सकल कोमल बहु छाई ।

उज्जल भलकत, रजन सीढि मनु सरस सुहाई ॥

पियके आगम हेत पाँवडे मनहुँ निछाण ।

रतन-रासि करि चूर कूल में मनु बगराए ॥

मनु मुक्त माँग सोभित भरी, श्यामनीर चिकुरन परसि ।

सतगुन छायो कै तीर में, ब्रज निवास लसि हिय हरसि ॥

प्रेम-महिमा

सम मिलि गाओ प्रेमनघाई ।

यह ससार रतन डक प्रेमहिं और वादि चतुराई ॥

प्रेम निना फीकी सम धातै कहहु न लाख वनाई ।

जोग ध्यान जप तप त्रत पूजा प्रेम निना निनसाई ॥

हाव भाव रस रग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई ।

निना लोन बिंजन सो सम ही प्रेम-रहित दरसाई ॥

प्रेमहि सो हरि हू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई ।

तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई ॥



श्रीधर पाठक

काश्मीर-सुखमा

धनि धनि श्रीकश्मीर-धरनि मन-हरनि सुहावनि,
 धनि कश्यप-जस-धुजा, विश्वमोहिनि मनभावनि ।
 धन्य आर्य-कुल-धर्म-पर्म-प्राचीन-पोठ-थल,
 धन्य सारदा-सवनि अवनि, त्रैलोक्य-पुन्य-फल ।
 धन्य पुरातन प्रथित धाम, अभिराम अतुल-छवि,
 स्वर्ग-सहोदरि धरनि, वरनि हारे कोविद कवि ॥

धन्य यहाँ की धूलि, धन्य नीरद, नभ, तारे,
 धन्य धवल हिमशृंग, तुङ्ग दुर्गेम दृग-प्यारे ।
 धन्य नदी नद-स्रोत, विमल गगोद-गोत जल,
 सीतल सुप्तद समोर, वितस्ता-तीर स्वच्छ-थल ।
 धनि उपवन, उद्यान, सुमन-सुरभित वनजीवी,
 खिलि रहीं चित्र विचित्र, पकृति के हाथजु चीती ।
 धन्य सुथर गिरिचरन सरित-निर्झर-रव-पूरित,
 लघु दीरघ तरु विहग-मोच, कोकिल कल कूजित ।
 मृदुल दूब-दल-रचित कुसुम-भूपित सुचि शाद्वल,
 ललित-लतावलि-रलित कलित रुमनीय सलिल-थल ।
 धनि सुप्रभा-सुप्त-भूल सरित-सर-कूल मनोहर,
 धनि सागर-सम-तूल विमल विस्तृत 'डल चूलर' ।

मानसरोवर - मान - हरन सुन्दर 'मानस बल',
घनि 'गधर बल,' 'गगरी बल,' श्रीनगर स्वच्छ 'डल' ।
एक एक सों सुधर अनेक सरोवर छाए,
प्रकृति देव निजरूप-लखन मनु मुकुर लगाए ॥

धन्य नगर श्रीनगर वितस्ता-कूलनि सोहै,
पुलिन भौन प्रतिभिन्व सलिल सोभा मन मोहै ।
लसत 'कदल' पुल सत, चपटा नौकागन डोलै,
रूपरासि नर-नारि वारि त्रिच करत कलोलै ।
धन्य राजप्रिय प्रजा, प्रजाप्रिय राज सुपारी,
घनि पुनीत नृपनीति प्रीतिपथ-पोपनहारी ।
यत्रन आर्य त्रिच न्याय-मध्य कछु भेद न दीसत,
सोवत सुख की नांद सनै निज-नृपहि असीसत ।
धन्य भिन्न मत प्रजा मध्य यह भेद-अभावा,
विमल-न्याय, नय, सुमति, सीता, बल, बुद्धि प्रभावा ॥

प्रकृति यहाँ एकान्त वैठि निज रूप सँवारति,
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति ।
विमल-अम्बु सर मुडुरन महँ मुख-विन निहारति,
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति ।
सजति सजावति सगसति हरसति दरमति प्यारी,
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी ।
बिहरति त्रिभिध विलास-भरी जोवन के मद सनि
ललकति किलकति पुलकति निररति धिरकति बनि ठनि ।

मधुर मज्जु छवि पुज छटा छिरकति वन कुंजन,
चितवति रिक्तवति हसति डसति मुसिक्याति हरति मन ॥

यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भँतिन,
सर, सरिता, गिरि, सिरार, गगन, गह्वर, तरुवर, वृत्त ।
पूरन करिबे काज कामना अपने मन की
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति - पंकज-चरनन की ।
चहुँ दिसि हिम गिरि-सिखर हीर-मनि मौलि-श्रवलि मनु
स्रवत मरित-सित-वार द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु ।
फल फूलन छवि छटा छई जो वन उपवन की,
उदित भई मनु श्रवनि-उदर सो, निधि रतनन की ।
तुहिन-सिरार, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छवि,
छई मडलाकार, रही चारहुँ दिसि यो फवि ।
मानहुँ मनिमय मौलि-माल-आकृति अलवेली,
वाँधी विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली ।
अर्द्धचन्द्र सम सिरार-स्रैनि कहूँ यों छवि छाई,
मानहुँ चन्दन-धौरि गौरि-गुरु सौरि लगाई ।
पुनि तिन स्रैनिन बीच वितस्ता रेख जु राजति,
वैष्णव "श्री" अरु शिव-त्रिशूल की आभा भ्राजति ॥

हिम स्रैनिन सों धिरयो अद्रिमडल यह रुरौ,
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख-पूरौ ।
बहु विधि नश्य अदृश्य कला कौशल सों छायाँ,

रत्न निधि नैसर्ग मनुहु विधि दुर्ग बनायी ।
 अथवा विमल तटोर विश्व की निगिल निकाई,
 गुप्त राशिने काज सुट्ट मदूक बनाई ।
 कै यह जादूभरी विश्व-राजीगर-थैली,
 खेलत मे खुलि परी शैल के सिर पे फैली ॥

सुरपुर अरु सुरकानन की सुठि सुन्दरताई,
 त्रिभुवन मोहन-करनि कविनु तहु वरनि सुनाई ।
 सो सत्र कानन सुनी, किन्तु नैनन नहीं देखी,
 जहँ तहँ पोथिन पढी पैसु परतच्छ न पेखी ।
 सो कवियन जो कही फलित सुरलोक निकाई,
 याही को अबलोकि एक कल्पना बनाई ॥

सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर,
 को सोभा कौ भौन रूप कौ कौन समुन्दर ?
 काकौं उपमा उचित दैन दोउन में काकी,
 याकौं सुरपुर की अथवा सुरपुर कौं याकी ?
 याकौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै,
 या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आतै ।
 यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुदर,
 यहि अमरन कौ ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर ॥

सो 'श्रीधर'-रुग बसी प्रेम अमृद-रस-दैनी,
 पुन्यअवनि सुरसवनि अलौकिक-सोभा-सैनी ।

पैसु यथारथ महिमा नहिं मोहि शक्ति बरानन,
 सहसा नहिं कहि सकहिं रुकहिं सहसन सहसानन ।
 कविगन कौं कल्पना कल्प-तरु, काम धैनु-सी,
 मुनियन कौं तपधाम, ब्रह्म-आनन्द-ऐनु-सी ।
 रसिकन कौं रसथान, प्रान, सर्वस, जीवन, धन,
 प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीडा-कलोल-वन ।
 ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै,
 मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै ॥

कायर

जो जग के सब कार्य स्वार्थ के गज से नापै,
 सत्रमें निज-सम सदा स्वार्थ-परता ही भाँपै
 परहित की चर्चा पर भी डर करके काँपै,
 वहाँ कभी ना जाय भद्रजन जुडें जहाँ पै
 हा ! ऐसे कायर से भला क्या कोई पुरुषार्थ हो,
 हों ऐसे सत्र जिस जाति में वह किस भाँति कृतार्थ हो

हिमालय

उत्तर दिसि नगराज अटल-छवि-सहित निराजत
 लसत खेत तिर मुकुट, कानक-हिम-सोभा भ्राजत ।
 वदन देस सत्रिसेस कनक-आभा आभासत
 अधोभाग की स्याम-वरन छवि हृदय हुलासत ॥ १

स्वेत-पीत सँग स्याम धार अनुगत सम अन्तर
सोहत त्रिगुन त्रिदेव त्रिजग प्रतिभास निरन्तर ।
त्रिलसत सो तिहुँ काल त्रिविध सुठि रैस अनूपम
भारतवर्ष-विशाल-भाल-भूपित त्रिपुङ्ग सम ॥ २ ॥

उज्ज्वल ऊँचे सिसर दूर देसन लौं चमकत
परत भानु-नय किरन प्रात, सुवरन सम दमकत ।
लता पुहुप नन राजि सदा ऋतुराज सुहावत
हरी-भरी, डहडही वृच्छ माला मन भावत ॥ ३ ॥

कोकिल-कीर कटन-अन चढि गान सुनावत
स्यामा चारु सुगीत मधुर सुर पुनि-पुनि गावत ।
कहुँ हारीत कपोत, कहुँ मैना लखि परियत
कहुँ कहुँ खेचर-वर चकोर के दरसन करियत ॥ ४ ॥

देवदार की डार कहुँ लगूर हिलावत
कहुँ मरकट को फटक बेग सो तरु-तरु धावत ।
विकसित नित नय कुसुम तरुन, तरु मुकुलित वौरत
अलबेले अलिवृन्द कलिन के ढिग-ढिग भौरत ॥ ५ ॥

भरना जहँ-तहँ भरत, करत कल छर छर जल ख्य,
पियत जीव सो अबु अमृत-उपमा हिम-तभय ।
पवन सीत अति सुखद शुभावत बहु त्रिधि तापा
यादर दरसत, परसत, धरसत आपदि आपा ॥ ६ ॥

पैसु यथारथ महिमा नहिं मोहि शक्ति वरदानन,
 सहसा नहिं कहिं सरुहिं रुरुहिं सहसन सहसानन ।
 कविगन कौं कल्पना कल्प-तरु, काम धैनु-सी,
 मुनियन कौं तपधाम, ब्रह्म-आनन्द-ऐनु-सी ।
 रसिकन कौं रसथान, प्रान्त, सर्वस, जीवन, धन,
 प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीडा-कलोल-धन ।
 ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै,
 मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै ॥

कायर

जो जग के सन कार्य स्वार्थ के गज से नापै,
 सत्रमें निज-सम सदा स्वार्थ-परता ही भाँपै ।
 परहित की चर्चा पर भी डर करके काँपै,
 वहाँ कभी ना जाय मद्रजन जुडैं जहाँ पै ।
 हा । ऐसे कायर से भला क्या कोई पुरुषार्थ हो,
 हों ऐसे सत्र जिस जाति में वह किस भाँति कृतार्थ हो ॥

हिमालय

उत्तर दिसि नगराज अटल-छत्रि-सहित भिराजत
 लसत स्वेत सिर मुकुट, मूलक-हिम-सोभा भ्राजत ।
 वदन देस सत्रिसेस कनक-आभा आभासत ।
 अधोभाग की स्याम-वरन छवि हृदय हुलासत ॥ १ ॥

स्वेत-पीत सँग स्याम धार अनुगत सम अन्तर
सोहत त्रिगुन त्रिदेव त्रिजग प्रतिभास निरन्तर ।
त्रिलसत सो तिहुँ काल त्रिभिध सुठि रस अनूपम
भारतवर्ष-विशाल-भाल-भूपित त्रिपुङ्गु सम ॥ २ ॥

उज्ज्वल ऊँचे सिसर दूर देसन लौं चमकत
परत भानु नव-किरण प्रात, सुवरन सम दमकत ।
लता पुहुप वन राजि सदा ऋतुराज सुहावत
हरी-भरी, डहडही वृच्छ माला मन भावत ॥ ३ ॥

कोकिल-कीर कदव-अन्न चढि गान सुनावत
स्यामा चारु सुगीत मधुर-सुर पुनि-पुनि गावत ।
कहुँ हारोत कपोत, कहुँ मैना लखि परियत
कहुँ कहुँ सेचर-वर चकोर के दरसन करियत ॥ ४ ॥

देवदार की डार कहुँ लगूर हिलावत
कहुँ भरकट को कटरु वेग सो तरु-तरु धावत ।
विकसित नित नव कुसुम तरुन, तरु मुडुलित बौरत
अलबेले अलिट्टन्द कलिन के ढिग-ढिग मौरत ॥ ५ ॥

करना जहँ-तहँ करत, करत कल छर छर जल रव,
पियत जीव सो अनु अमृत-उपमा हिम-सभव ।
पवन सीत अति सुखद बुझावत बहु त्रिधि तापा
चादर दरसत, परसत, बरसत आपहि आपा ॥ ६ ॥

पेसु यथारथ महिमा नहिं मोहि शक्ति वरदानन,
 सहसा नहिं कहि सकहिं रुकहिं सहसन सहसानन ।
 कविगन कौं कल्पना कल्प-तरु, काम धैनु-सी,
 मुनियन कौं तपधाम, ब्रह्म-आनन्द-ऐनु - सी ।
 रसिकन कौं रमथान, प्रान, सर्वस, जीवन, धन,
 प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीडा-कलोल-वन ।
 ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै,
 मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै ॥

कायर

जो जग के सन कार्य स्वार्थ के गज से नापै,
 सबमें निज-सम सदा स्वार्थ-परता ही भाँपै ।
 परहित की चर्चा पर भी डर करके फौपै,
 वहाँ कभी ना जाय मद्रजन जुडैं जहाँ पै ।
 हा । ऐसे कायर से भला क्या कोई पुरुषार्थ हो,
 हों ऐसे सन जिस जाति में वह किस भाँति कृतार्थ हो ॥

हिमालय

उत्तर दिसि नगराज अटल-छत्रि-सहित निराजत
 लसत खेत सिर मुकुट, भलक-हिम-सोभा भ्राजत ।
 वदन देस सत्रिसेस कनक-आभा आभासत
 अधोभाग की स्याम-चरन छवि हृदय हुलासत ॥ १ ॥

सोहत सुन्दर खेत-पाँति तर ऊपर छाई
मानहु विधि पट हरित स्वर्ग सोपान विछाई ।
गहरे गहरे गर्त सङ्घ दीर्घ गहराई
सत्र करत ही घोर प्रतिध्वनि देत सुनाई ॥१२॥

तहाँ निपट निशोक वन्य पसु सुख सों विचरत
करत केलि कल्लोल, मुदित आनन्दित विहरत ।
कहुँ ईधन कौ ढेर सिद्ध-आवास जनावत
कहुँ समाधि-स्थित जोगी की गुहा सुहावत ॥१३॥

विविध विलच्छन दृश्य सृष्टि-सुखमा-सुख-मडल
नदन-वन-अनुरूप - भूमि-अभिनय - रगस्थल ।
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम-अचरज-आराध
'श्रीधर' दृग द्यकि रहत अटल-द्यवि निररिहि हिमालय ॥१४॥

वन-शोभा

चारु हिमाचल-आँचल में एक साल निमालन कौ वन है ।
मृदु मर्मर शीला भरें जटा-स्रोत हैं पर्वत-ओट है निर्जन है ॥
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहगन कौ गन है ।
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरै मद भावरौ सौ अलि को मन है ॥

काली घटा का घमड घटा, नभमडल तारका-शुद्ध रिले ।
उजियाती निशा, द्यविशाली दिशा अति सोहें घरातल फूले फले ॥

गगा गोमुख स्रवत कहै को सोभा ताकी ?
 वरनै जन्मस्थली वह कि, अथवा जमुना की ?
 सतलज, व्यास, चिनाथ प्रभृति पजाव पच-जल,
 सरजू आदि अनेकन नदियन कौ निसरन-थल ॥ ७ ॥

पृष्ठभाग रमनीक रुचिर राजत रावन-हृद
 गहन करत निज देह मिंधु अरु ब्रह्मपुत्र नद ।
 हरिद्वार, केदार, बदरिकाश्रम की सोभा
 लखि ऐसौ को मनुज, जासु मन कवहुँ न लोभा ? ॥ ८ ॥

पुनि दखिय कसमीर देस, नैपाल तराई
 सिक्किम और भूटान राज्य आसाम लगाई ।
 दक्षिण भुज अफगान-रोज-मस्तक । सौं भेटत
 वाम बाहु सौं वरमा के कच-भार समेटत ॥ ९ ॥

ज्यों समर्थ बलवान सुभावहिं सौं उदार-मन
 देत अभय-वर-दान मान-युत निज प्राश्रित-गन ।
 आर्यावर्त्त पुनीत ललकि हिय भरि आलिंगत
 गगा जमुना अश्रु प्रेम प्रगटत हृदयगत ॥१०॥

रूरे - रूरे गाम अधिक अतर सो सोहत
 रूखती पर्वती सती जुवती मन मोहत ।
 अगनित पर्वत-गड चहुँ दिसि देत दिखाई
 सिर परसत आकास, चरन पाताल छुआई ॥११॥

सोहत सुन्दर खेत-पाँति तर ऊपर छाई
मानहु विधि पट हरित स्वर्ग-सोपान निछाई ।
गहरे गहरे गर्त सङ्घ दीरघ गहराई
सज्ज करत ही घोर प्रतिध्वनि देत सुनाई ॥१२॥

तहाँ निपट निश्शक वन्य पसु सुख सों विचरत
करत केलि कल्लोल, मुदित आनन्दित विहरत ।
कहुँ ईधन कौ ढेर सिद्ध-आवास जनावत
कहुँ समाधि-स्थित जोगी की गुहा सुहावत ॥१३॥

विविध विलच्छन दृश्य सृष्टि-सुखमा-सुख-मडल
नदन-वन-अनुरूप - भूमि-अभिनय - रगस्थल ।
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम-अचरज-आलय
'श्रीधर' दृग छकि रहत अटल-छवि निरखि हिमालय ॥१४॥

वन-शोभा

चारु हिमाचल-आँचल में एक साल विसालन कौ वन है ।
मृदु मर्मर शील भरें जल-स्रोत हँ पर्वत-ओट है निर्जन है ॥
लिपटे हैं लता-द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहगन कौ गन है ।
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरै मद बावरौ सौ अलि को मन है ॥
काली घटा का घमड घटा, नभमडल तारका-वृद्ध खिले ।
चजियाली निशा, छविशाली दिशा अति सोहैं धरातल फूले फले ॥

निरखरे सुखरे धन-पथ खुले तरु-पेड़व चन्द्रकला से धुले ।
 वन शारदी-चन्द्रिका-चादर ओढ़ें लसैं समलकृत कैसे भले ॥
 भारत में वन । पावन तू ही तपस्वियों का तप-आश्रम था ।
 जग-तत्त्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अभ्रम किया श्रम था ॥
 जब प्राकृत विश्वका विभ्रम और था, सात्त्विक जीवन का क्रम था ।
 महिमा वन-वास की थी तब और प्रभावे पवित्र अनूपम था ॥

वृन्दावन

नैन किन वृन्दावन-द्वि देखहु ।
 निरखि नित्य-लीला-विहार किन जन्म सुफल करि लेखहु ॥
 जो चाहै निरखन या छवि कौ है अनन्य-मन प्रानी ।
 जुगल रूप तिहि देय दरम प्रभु प्रेमी जन निज जानी ॥
 जाहि देखि फिर कछु देखन की चाह न मन रहि जाई ।
 सो रस-रास-विलास-भूमि श्रीवृदा-विपिन सुहाई ॥
 यह देखहु वृषभान-सुता मँग सोहत कुँवर कन्हारि ।
 बसीयट के निकट मधुर सुर बसी रहे बजारि ॥
 सोइ गोपी, सोइ घेनु, वेनु-धुनि सुनि तन-मन विसरारि ।
 चित्र-लिखित-सी रहौ चकित है मनहु ठगौरी रारि ॥
 शृण्य-कृपा लहि भई कृष्ण-मय कृष्ण-प्रेम-पद पारि ।
 वजि धन धाम गाम कामिनि रहौ कृष्ण-नाम-गुन गारि ॥

नाथूराम शंकर शर्मा

प्रबोध-पूर्णिमा

जो ससार-सुधार में रहते हैं अनुरक्त ।
 वे अमोघ आदर्श हैं जगदुन्नति के भक्त ॥ १ ॥
 जो मन वाणी कर्म से सज्जा करें सुधार ।
 वे बड़भागी धन्य हैं सुकृती परमोदार ॥ २ ॥
 जो जीवन के अत ला करता हुआ सुकर्म ।
 धन्य उसी का मित्र, है सत्य सनातन धर्म ॥ ३ ॥
 जो सुकृती ससार का करते हैं उपकार ।
 पूजें उनको प्रेम से सभ्य, कृतज्ञ उदार ॥ ४ ॥
 कर लेता है शुद्ध जो जग आचार विचार ।
 सत्य सुक्ताता है उसे तन ससार असार ॥ ५ ॥
 धर्मशील माता-पिता अतिथि और आचार्य ।
 इनकी पूजा प्रेम से करते रहें सदाय ॥ ६ ॥
 मर्म जनावे धर्म का जिसका अनुसधान ।
 पूजें उस मस्तिष्क को वैदिक देव सुजान ॥ ७ ॥
 मान मित्रता का करो प्रेम पत्रि पसार ।
 मित्र-मडली से मिलो छल कापट्य विसार ॥ ८ ॥
 दीनों को सुख-दान दो समझो इसे न पाप ।
 क्या तोगे यदि हो गए उनसे दुःखिया आप ॥ ९ ॥

सुख भोगें दानों धनी उन्नति का मुख चूम ।
 घर जाते हैं और को जोड़-जोड़ धन सूम ॥ १० ॥
 जन्म भूमि का देश का हो न जिसे अभिमान ।
 ऐसे ऊत उतार को मानो मृतक-ममान ॥ ११ ॥
 धीर, बडाई लोक में फरो न अपनी आप ।
 श्रोता समझेंगे उस कैंवल पोच-प्रलाप ॥ १२ ॥
 निन्दा करो न और की है यह निन्दित कर्म ।
 निन्दक, जानोंगे नहीं मनुज-वर्म का मर्म ॥ १३ ॥
 पोच पापियों से घृणा करना ममको पाप ।
 धर्माभार सुधार में सुधरो अपने-आप ॥ १४ ॥
 प्यारे, अयके काम को फिर केतिये न छोड़ ।
 चार फलों का साहसी पीले म्यरस निचोड़ ॥ १५ ॥

स्फुट पद्य

शंकर नदी नद नैशैभन के नीरन की,

भाप धन धरत हैं

जासगी ४७५

जगन्नाथदास रत्नाकर

कलकाशी

परम रम्य सुररासि कासिका पुरी सुहावनि ।
 सुर-नर-मुनि-गन्धर्व यच्छ किन्नर-मन भावनि ॥
 समु सदासिव त्रिखनाथ की अति प्रिय नगरी ।
 वेद-पुराननि मॉहिं गनित गुनगन में अगरी ॥ १ ॥
 तीन लोक दस चार भुवन तैं निपट निराली ।
 निज त्रिसूल पर धारि समु जो जुग-जुग पाली ॥
 जाके ककर में प्रभाव सकर कौ राजै ।
 जम-किंकर जिहिं जानि भयकर दूरहि भाजै ॥ २ ॥
 जामें तजत सरीर पीर जग जनम-भरन की ।
 छूटति त्रिनहिं प्रयास त्रास जम पास परन की ॥
 जामें धारत पाय हाथ करि कूटत छाती ।
 पात-पुज परात गात के जनम सँघाती ॥ ३ ॥
 सुधि सुरराज-समाज जाति सेवन को तरसत ।
 दरस परस लहि सरस आँस आनँद के घरमत ॥
 ब्रह्मा त्रिपु महेस सेस निज वैभव भूले ।
 धरि धरि वेस असेस जहाँ विचरत सुख फूले ॥ ४ ॥
 सुठि सुदार त्रिपुरारि पिनाकाकार बसी है ।
 छत्तर बरुना औ दक्षिण कौ फोट असी है ॥

उत्तर-श्राद्धिनि गग प्रतिचा प्राची दिसि घर ।
 उन्नत मंदिर मजु सिंहर जुत लसत प्रखर सर ॥ ५ ॥
 वम-वम की टकार धनुष-टकार पसारै ।
 जाकौ धमक-प्रहार पापगिरि-हार निदारै ॥
 जिहि पिनाक की धाक धरामडन में मडित ।
 जासैं होत त्रिताप-दाप त्रिपुरासुर रडित ॥ ६ ॥
 घेरी उपवन वाग वाटिकानि मों सुठि सोहै ।
 ज्यों नदन-वन घीच वस्यौ सुरपुर मन मोहै ॥
 वापी कूप तड़ाग जहाँ तहँ विमल निराजै ।
 भरेसुधा सम सलिल रसिकजन हिय लों भ्राजै ॥ ७ ॥
 धवन धाम अभिराम अमित अति उन्नत सोहैं ।
 निज सोभा सों बेगि विख्यकर्मा मन मोहैं ॥
 ध्वजा पताका तोरन सों बहु भँति सजाए ।
 चित्रित चित्र विचित्र द्वार पर कलस धराए ॥ ८ ॥
 हाट वाट घर घाट घने अति विसद निराजै ।
 गुदडी गोला गज चारु चौहट छवि छाजै ॥
 नीकी निपट नखास सुघर सट्टी सब सोहैं ।
 कल कटरा वर वार मजु मडी मत्त मोहैं ॥ ९ ॥
 चारहु घरन पुनीत नीतजुत वसत सयाने ।
 सुदर सुघर सुसोल स्वच्छ सदगुन सरसाने ॥
 जातिधर्म कुलधर्म भर्म के जाननिहारे ।
 मर्यादा-अनुसार सकल आचार सुधारे ॥ १० ॥

सन त्रिधि मवहिं सुपास सुलभ कासी वासिनि कौं ।
 निज-निज रुचि अनुमार लहहिं सन सुख-वासिनि कौं ॥
 श्रमन वसन वर वाम धाम अभिराम मनोहर ।
 ज्ञान गान गुन मान सफल सामग्री वर ॥ ११ ॥
 कहूँ सज्जन द्वै चार चारु हरि-जस-रस रौंचे ।
 पुलकित तन मन मुत्तित मील सदगुन के मँचे ॥
 भक्तिभाव भरपूर धर भव विभन्न विचारे ।
 भगवत-लीला-रागित-मधुर-मदिरा-मतवारे ॥ १२ ॥
 कहूँ परमहम प्रसस वस मन मानमचारी ।
 जीवन मुक्ति महान मजु मुफता अधिकारी ॥
 उज्ज्वल प्रकृति प्रवीति हीन भव पक पच्छधर ।
 जगज्जाल-जजाल-गहन-वन अगम पारकर ॥ १३ ॥
 कहूँ पडित सु उदार बुद्धि-वर गुन-गान महित ।
 साख सख सधाम करन सुरगुरु-भद सडित ॥
 विद्या-वारिधि मथन माहिं मदर अति तीके ।
 कठिन करारे वेद निदित व्योहार नदी के ॥ १४ ॥
 दलन द्विपच्छिति-पच्छ माहिं अति वच्छ राम से ।
 नैयायिक अति निपुन वेद-वेदात धाम से ॥
 पट साखनि कौ गूढ ज्ञानधर सिगकुसार से ।
 वैयाकरण विदग्ध सुमति वारिधि अपार से ॥ १५ ॥
 सिष्य पाँति कौ गूढमय बहु भाँति पदावत ।
 अन्वयार्थ सद्दार्थ भरे भावार्थ बतावत ॥

धर्म कर्म व्यवहार विषय जो पूछन आँ ।
 तिनकौ करहिं प्रबोध भली विधि बोध बढावै ॥ १६ ॥
 हरि-कीर्तन की कहूँ मडली सुघर सुहाई ।
 हरि-हर-गुन-गान-गान वितान तनति सुखदाई ॥
 काम क्रोध मद मोह दनुजदल दलन सदाहीं ।
 रामचद्र से वचन-वान साधक जिहि माहीं ॥ १७ ॥
 लसत धाम अभिराम दिव्य गोमय सौं लीपे ।
 कुकुम चदन चारु चून ऐपन सौं टीपे ॥
 तिल तदुल यव पात्र घने घृत भाड भराए ।
 असन वसन साहित्य सकल जिन माहिं धराए ॥ १८ ॥
 कहूँ पाँति की पाँति विप्रगन सहज सुभाए ।
 कलित कुसासन पै बैठे मन मोद मढाए ॥
 सुदर गोरे गात वख उपवख सँवारे ।
 सिग्ना मूत्र औ भस्म रीतिजुत अग्नि धारे ॥ १९ ॥
 कहूँ साधु सतनि के सोहत सुभग अरारै ।
 घटा सख मृदग वजत जहँ सौँफ सकारै ॥
 होति आरती पूज्य देव गुरु अथ सुगथ की ।
 पूजा अर्चा भाँति भाँति सौं निज निज पथ की ॥ २० ॥
 चहुँ दिसि द्विघट दलान देग्वियत दीरघ कोठे ।
 भरे भव्य भडार निसद घर बने वरोठे ॥
 आँगन घीच नगीच कूप के मदिर राजत ।
 जापै चढथो निसान सान सौं फवि छवि छाजत ॥ २१ ॥

कहूँ म्वाहु कटाह प्रसाद लागि भोग घटत है ।
 कहूँ मालपूवा रसाल तिहूँ काल कटत है ॥
 घहरि वनत मध्याह्न समय घहु रुचिर रसोई ।
 तत्र भोजन सत्र लहत रहत तहँ जव जो कोई ॥ २२ ॥
 आनत अभ्यागत अन्नक मधुकर-त्रतधारी ।
 पंच भवन भ्रमि पचभूत पोपन अधिकारी ॥
 आँचल औ शौषोन कमे कटि कर मोली गहि ।
 लै मधुकरे प्रथम जात सो नारायन कहि ॥ २३ ॥
 चैठि साधु द्वे चार जहाँ तहँ सुचि मतिवारे ।
 वदन तेज फी छटा जटा सिर सुदर धारे ॥
 कोऊ कापायी उसन पहिरि कोऊ सिमिरिप रगी ।
 सज्जन सुधर सुजान सीलमागर सतसगी ॥ २४ ॥
 कोउ हरि-लीला कहत सुनत पुलकत पुलकावत ।
 कोऊ न्याय वेदात तरनि मुलकत मुलकावत ॥
 कोउ सितार करतार मेति हरि गुन-भान गावत ।
 कोउ उमग सों सग मग डोलक डमकावत ॥ २५ ॥
 सनयामिनि के कहूँ महान मजुल मठ राजें ।
 दरदलान कोठे जिनमें चहँ दिसि छवि आजें ॥
 छत छतरी तर बढ सभ गेरु रँग राखे ।
 अलकतरे रँग कल क्रियार सित सोहत पाये ॥ २६ ॥
 बढ पीपर औ मौलसिरी के विदप सुहाए ।

मैथिलीशरण गुप्त

मातृभूमि ।

[१]

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुदर है,
 सूर्य-चंद्र युगं मुकुट मेखला रत्नाकर है ।
 नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मडन हैं,
 वन्दी जन रग घृन्द शेष-फन सिंहासन हैं ।
 करते अभिपेक पयोद हैं बलिहारी इस वेप की,
 है मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥

[२]

मृतक समान अशक्त विवश आँखों को मीचे,
 गिरता हुआ बिलोक गर्भ से हमको नीचे ।
 करके जिसने कृपा हमें अबलम्ब दिया था,
 लेकर अपने अतुल अक में त्राण किया था ।
 जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही,
 तू क्यों न हमारी पूज्य हो ? मातृभूमि, गातामही ! ॥

[३]

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं,
 घुटनों के धल सरक-सरककर लड़े हुए हैं ।
 परमहस-सम बाल्यकाल में सब सुप्त पाये,
 जिसके कारण "धूल भरे हीरे" कहलाये ।

हम खेले कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृभूमि ! तुझको निरल मग्न क्यों न हों मोद में ? ॥

[४]

पालन-पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वन स्थल पर हमें कर रही धारण तू ही ।
अभ्रकप प्रासाद और ये महल हमारे,
वन हुए हैं अहो ! तुम्ही से तुम्हपर सारे ।
हे मातृभूमि ! जन हम कभी शरण न तेरी पायेंगे,
बस, तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायेंगे ॥

[५]

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है ।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाष से सदा हमारा ।
हे मातृभूमि ! उपजें न जो तुझसे कृपि अकुर कभी,
तो तड़प-तड़पकर जल मरें जठरानल में हम सभी ॥

[६]

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा ?
खेरी ही यह देह, तुम्ही से बनी हुई है,
बस [तेरे ही सुरस-सार से बनी हुई है ।
हा ! अन्त-समय तू ही इसे अचल देग्य अपनायगी,
हे मातृभूमि ! यह अन्त में मुझमें ही मिल जायगी ॥

[७]

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
 जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता ।
 जिन स्त्रजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
 नहीं टूटता कभी जन्म, भर जिनसे नाता ।
 उन सबमें तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्त्व है,
 हे मातृभूमि । तेरे सदृश किसका महा महत्त्व है ? ॥

[८]

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
 शीतल-मन्द-सुगंध पवन हर लेता श्रम है ।
 पट् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
 हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है ।
 शुचि सुधा सींचता रात में तुम्हपर चंद्र-प्रकाश है,
 हे मातृभूमि । दिन में तरणि करता तम का नाश है ॥

[९]

सुरभित सुन्दर सुखद सुमन तुम्हपर खिलते हैं,
 भौंति-भौंति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं ।
 ओपधियों हैं प्राप्त एक से एक निराली,
 खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नोंवाली ।
 जो आवश्यक होते हमें मिलत सभी पदार्थ हैं,
 हे मातृभूमि । वसुधा, धरा, तेरे नाम यथार्थ हैं ॥

[१०]

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
 कहीं घनावलि वनी हुई है तेरी बेणी ।
 नदियाँ पैर पसार रही हैं बनकर चेरी,
 पुष्पों से तरु राजि कर रही पूजा तेरी ।
 मृदु मलय-वायु मानों तुझे चन्दन चारु चढा रही,
 हे मातृभूमि ! किसका न तू सात्त्विक भाव बढ़ा रही ? ॥

[११]

सुमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
 सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है ।
 विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुःसहर्त्री है,
 भयनिवारिणी, शान्ति-कारिणी, सुखकर्त्री है ।
 हे शरणदायिनी देवि ! तू करती सत्रका त्राण है,
 हे मातृभूमि ! सन्तान हम, तू जननी तू प्राण है ।

[१२]

आते ही उपकार चाद हे माता ! तेरा,
 हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेर ।
 तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी ! हम गावें,
 मन तो होता तुझे उठाकर शीश चढ़ावें ।
 वह शक्ति कहाँ, हा ! क्या करें, क्यों हमको लज्जा न हो ?
 हम मातृभूमि ! केवल तुझे शीश मृका सकते अहो ! ॥

[१३]

कारणवश जत्र शोक-दाह से हम दहते हैं,
 तत्र तुम्हपर ही लोट-लोटकर दुःख सहते हैं ।
 पारसही भी धूल चढाकर तनु में तेरी,
 कहलाते हैं साधु नहीं लगती है देरी ।
 इस तेरी ही शुचि धूलि में मातृभूमि । वह शक्ति है,
 जो झुर्रों के भी चित्त में उपजा सकती भक्ति है ॥

[१४]

कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
 जो यह समझे हाय । देखता वह सपना है ।
 तुम्हको सारे जीव 'एक-से ही प्यारे हैं,
 कर्मों के फल-मात्र यहाँ न्यारे न्यारे हैं ।
 हे मातृभूमि ! तेरे निकट सबका सम 'सम्बन्ध है,
 जो भेद मानता वह अहो ! लोचनयुत भी अन्ध है ॥

[१५]

जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
 उसमें हे भगवान् ! कभी हम रहें न न्यारे ।
 लोट लोटकर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
 उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे ।
 उस मातृभूमि की धूल में जत्र पूरे सन जायँगे,
 होकर भव-वधन-मुक्त हम आत्मरूप वन जायँगे ॥

शकुन्तला की विदा

शान्त हृदय वात्सल्य-करुण से सना हुआ है,

कण-तपोवन आज सदन सा बना हुआ है ।

शकुन्तला की विदा आज है प्रिय के घर को,

विदित हुआ मन वृत्त हर्षपूर्वक मुनिवर को ॥ १ ॥

वे पुत्री के लिए चाहते थे वर जैसा,

निज सुकृतों से स्वयं पा लिया उसने वैसा ।

यह विचारकर तुष्ट हुए वे अपने मन में,

साज सजाये गये विदा के पावन वन में ॥ २ ॥

शकुन्तला क्या जाय हाय ! बल्कल ही पहने ?

वन-देवों ने दिये उसे सुदर पट-गाहने ।

सखियों ने शृंगार किया उसका मन-माना,

जिसको अन्तिम समझ बहुत कुछ उसने जाना ॥ ३ ॥

प्रिय-दर्शन का उसे यदपि उत्साह बढा था,

पर स्वजनो का विरह-ताप भी बहुत कडा था ।

विकल हुई वह उभय ओर की बाधा सहती,

ऊपर नीचे भूमि यथा आकर्षित रहती ॥ ४ ॥

चारों ओर उदास भाव आश्रम में छाये,

सखियों के भी नेत्र आँसुओं से भर आये ।

किन्तु उन्होंने कहा—“सखी ! कुछ सोच न कीजो,

प्रिय को उनकी दखला दीजो

शकुन्तला कुछ कह न सकी गद्गद होने से,

था पवित्र कुछ और न उसके उस रोने से ।

भावी जीवन प्रेम-पूर्ण हो सिल सकता है,

यह बिछड़ा धन किन्तु कहाँ फिर मिल सकता है ? ॥६॥

त्यागी थे मुनि कएव, उन्हें भी करुणा आई,

होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई ।

होम-शिरसा की परिक्रमा उससे करवाई,

और उन्होंने स्वस्ति-गिरा यों उसे सुनाई ॥ ७ ॥

“तुम्हको पति के यहाँ मिले सन भौंति प्रतिष्ठा,

ज्यो ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा ।

सार्वभौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे—

तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे ॥ ८ ॥

“गुरुओं की सन्मान-सहित शुश्रूषा करियो,

सत्पौ-भाव से हृदय मदा सौतों का हरियो ।

करे यदपि अपमान, मान मत कीजो पति से,

हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से ॥ ९ ॥

“परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,

कभी भूलकर बडे भाग्य पर गर्व न कीजो ।

इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं,

उलाटी चलकर बश-व्याधियाँ कहलाती हैं ॥१०॥

“शकुन्तले निश्चिन्त। आज हूँ यद्यपि तुम्हसे,

सहा न जाता किन्तु विरह यह-तेरा मुझसे ।

श्रद्धो ! गृहस्थ-समान मानता हूँ अपने को,

सधा-सा में आज जानता हूँ सपने को । ॥११॥

“सुते । तव स्मृति-चिह्न तपोवन मे बहुतेरे—

देते थे जो महामोद मानस में मेरे ।

उदासीनता घटा रहे हँ आज सभी ये

कुल्ल के कुल्ल हो गये दृश्य सय अभी अभी ये । ॥१२॥

“सारा आश्रम आज शून्यता दिखलाता है,

वन से भी वैराग्य-भाव बँडता जाता है ।

वनदेवी-सी कौन विपिन में अब बिचरेगी ?

मृग-सन्तति अब किसे घेरकर खेल करेगी ? ॥१३॥

“कौन मालिनी तीर नीर लेने जावेगी ?

कौन मल्लियाँ चुगा-चुगाकर सुख पावेगी ?

कौन प्रेम से पुष्प-वाटिका को सींचेगी ?

कौन अचानक सखीजनों के दृग मीचेगी ? ॥१४॥

“कौन दौडकर शीघ्र उठाने को हीरे-से

नीड-न्युत रग पोत सँभालेगी धीरे से ?

रग-रग के वन विहङ्ग पेडों से उडकर—

बोलेंगे मृदु वचन बैठ किसके अगों पर ? ॥१५॥

“विना कहे ही कौन अखिल आलसता त्यागे—

रक्खेगी होमोपकरण वेदी के आगे ?

मेरे पथ के कौन कास-कटक चुन लेगी ?

कौन उचित आतिथ्य अतिथि लोगों को देगी ? ॥१६॥

“वेदी खुदती देस हरिण-शृङ्गों के मारे—

‘बेटी’ कहकर किसे बुलाऊँगा मैं द्वारे ?

किसको आया देख शान्त वे हो जावेंगे ?

अपनी खोई हुई सम्पदा सी पावेंगे ॥१७॥

“जाने दूँ, यह विषय और भी है दुःखदायी,

सुते । धैर्य धर, बने मार्ग तेरा सुखदायी ।

मेरा वह उपदेश कभी तू भूल न जाना,

शील-मुधा से साँच जगत को स्वर्ग बनाना” ॥१८॥

यों कहकर जब मौन हुए मुनि सकरुण होकर—

शकुन्तला गिर पड़ी पदों में उनके रोकर ।

“होंगे कब हे तात ! तपोवन के दर्शन फिर ?”

इतना कहकर हुई दुःख से वह अति अस्थिर ॥१९॥

“रहकर चिरदिन भूमि-सपत्नी, नृप की रानी,

रुके न जिसका मार्ग पुत्र पाकर कुलमानी ।

करके उसका व्याह, राज्य-सिंहासन देकर

आवेगी पति-सग यहाँ फिर तू यश लेकर ॥२०॥

“जन्म तू प्रिय क यहाँ सुगृहिणी-पद पावेगी,

गुरु कार्यों में लीन सदा सुख सरसावेगी ।

रवि को प्राची-सदृश श्रेष्ठ सुत उपजावेगी,

तन यह मेरा विरह-दुःख सन मिसरावेगी” ॥२१॥

यों ही बहुविध इसे कएव मुनि ने समझाया,

विदा किया, दो शिष्यवरों को सग पठाया ।

गई गौतमी तपस्विनी भी पहुँचाने को—

उसका शुभ सौभाग्य देखकर सुख पाने को ॥२२॥

शकुन्तला घर गई विपिन को सूना करके,

दोनों सखियों फिरीं किसी विध धीरज धरके ।

मोरों ने निज नृत्य, मृगों न चरना छोडा,

हिमगिरि ने भी वाष्प वारि-सम भरना छोडा । ॥२३॥

भंकार

इस शरीर की सकल शिराएँ हों तेरी तन्त्री के तार,

आघातों की क्या चिन्ता है, उठने दे ऊँची मकार ।

नाचे नियति, प्रकृति सुर साथे, सन सुर हों सजीव, साकार,

देश देश में, काल काल में, उठे गमक-गहरी गुजार ।

कर प्रहार, हाँ, कर प्रहार तू, मार नहीं, यह तो है प्यार,

प्यारे, और कहूँ क्या तुझसे, प्रस्तुत हूँ में, हूँ तैयार ।

मेरे तार तार स तेरी, तान तान का हो विस्तार,

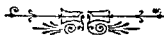
अपनी अँगुली के धके से रोल अस्मिन् श्रुतियों के द्वार ।

ताल ताल पर भाल मुक्ताकर मोहित हों सन वारवार,

लय बँध जाय और क्रम क्रम से नम में समा जाय ससार ॥

यात्री

रोको मत, छेड़ो मत कोई मुझे राह में,
 चलता हूँ आज किसी चचल की चाह में ।
 काँटे लगते हैं, लगें, उनको सराहिए,
 कटक निकालने को कटक ही चाहिए ॥
 घहरा रहे हैं घन चिन्ता नहीं इनकी,
 अवधि न थीत जाय क्षय । चार दिन की ।
 छाया है अँधेरा, रहे, लक्ष्य है समक्ष ही,
 दीप्ति मुझे देगा अभिराम कृष्ण पक्ष ही ॥
 ठहरो, समक्ष ही तो क्षुब्ध पारावार है,
 करना उसे ही अरे ! आज मुझे पार है ।
 भूत मिलें, प्रेत मिलें, वे मरे—मैं जीता हूँ,
 भीति क्या करेगी भला, प्रीति-सुधा पीता हूँ ॥
 मौत लिए जा रही है, तो फिर क्या डर है ?
 दूती वह प्रिय की है, दूर नहीं घर है ।
 आपको न देखा आप मैंने कभी आपसे,
 डूबेगा विलाप आज डूबेगा मिलाप में ॥



रामनरेश त्रिपाठी

प्रकृति-वर्णन

छूता हुआ गाँव की सीमा अति निर्मल जलवाला ।
 बहता है अबिराम निरंतर कल-कल स्वर से नाला ।
 अनति दूर पर हरियाली से तदी सजी गिरि-माला ।
 किन्तु नहीं इससे हृदयों में है आनन्द-उजाला ॥ १ ॥

कहीं श्याम चट्टान, कहीं दर्पण-सा उज्वल सर है ।
 कहीं धरे नृण खेत, कहीं गिरि-श्रोत प्रवाह प्रखर है ।
 कहीं गगन के सभ नारियल, तार भार सिर धारे ।
 रस-रसिकों के लिए खड़े ज्यों सुप्त नकार इशारे ॥ २ ॥

ऊँचे से झरने झरते हैं, शीतल धार धवल है ।
 यहाँ परम सुख शान्ति-समन्वित नित आनन्द अटल है ।
 कहीं धार के पास शिला पर बैठ लोग क्षण भर को ।
 पा सकते हैं शान्ति, मिटा सकते हैं जी के ज्वर को ॥ ३ ॥

वार-वार वरु पक्ति-गमन से उज्वल फूटोंवाली ।
 मेघपुष्प-वर्षा से धूमिल घटा क्षितिज पर काली ।
 लहराती दृग की सीमा तक धानों की हरियाली ।
 वारिज-नयन गगन-छवि-दर्शक सर की छटा निराली ॥ ४ ॥

निम्ब कदम्ब अम्ब इमली की श्याम निरातप छाया ।
 सेवन कर फिर लोभ-शोक की याद न रखती काया ।

बैठ बाग की विशद मँड पर कोमल अमल पवन में ।
 आँस मूँट करता किसान है श्रम का अनुभव मन में ॥ ५ ॥
 कोकिल का आलाप पपीहे की विरहाकुल वानी ।
 तोता मैना का विवाद बुलबुल की प्रेम-कहानी ।
 मधुर प्रेम के गीत तरुनियाँ गार्ती रेत निरार्ती ।
 क्या ये क्षण भर को न किसी के मन का कष्ट मुलातीं ॥ ६ ॥
 विमलोदक पुष्कर में विकसे चित्र-विचित्र कुसुम हैं ।
 खडे चतुर्दिक शान्त भाव से लतिकालिंगित द्रुम हैं ।
 देख सलिल-दर्पण में शोभा वे फूले न समाते ।
 दे प्रसून-उपहार सरोवर को निज हर्ष जनाते ॥ ७ ॥
 बजुल मजुल सदा सुसजित मज्जित ब्रह्मदन-विसर से ।
 अलि-कुल-आकुल बकुल मुकुल-सकुल-न्याकुल नभचर से ।
 आसपास का पद्य सुरभित है महक रही फुनवारी ।
 बिछी फूल की सेज, बाजती वीणा है सुखकारी ॥ ८ ॥
 नालो का सयोग, साँझ का समय, घना जगल है ।
 ऊँचे-नीचे खोह फगारे निर्जन वीहड थल है ।
 रह-रहकर सौरभ समीर में हैं वन पुष्प उडाते ।
 ताप तप्त जन यहाँ क्यों न आकर क्षण एक जुडाते ॥ ९ ॥
 सभ्या समय चतुर्दिक से बहु हर्ष-निनाद सुनाते ।
 विविध रूप-रगों के पत्ती झुड-झुड मिल आते ।
 बैठ पल्लवों पर सब मिलकर गान मनोहर गाते ।
 अद्भुत वाद्य-यत्र पादप को हैं प्रतिदिवस घनाते ॥ १० ॥

प्रातःकाल समत्व-हीन वे कहीं-कहीं उड जाते ।
जग को हैं अनित्य मेले को रोचक पाठ पढाते ।
यह सन देख नहीं क्यों मन में उत्तम भाव समात ।
लोग यहाँ पर बैठ घडी भर क्यों न सोख कुछ जाते ॥ ११ ॥

अति निस्तब्ध निशोथ तमावृत मौन प्रकृति-कुल मारा ।
शान्त गगन में फिलमिल करत हैं नित नीरव तारा ।
निद्रित दिशा, समीर सुकोमल, उदयोन्मुख हिमकर है ।
क्या सब शोक मुलाने का यह नहीं एक अवसर है ॥ १२ ॥

गिरि, मैदान, नगर, निर्जन में एक भाव में मारी ।
सरल कुटिल अति तरल मृदुल गति से बहु रूप दिखाती ।
अस्थिर समय समान प्रवाहित ये नदियाँ कुछ गती ।
चलीं कहीं से, कहीं जा रहीं, क्यों आईं, क्यों जातीं ? ॥ १३ ॥

कोमल पथ है, दिशा शान्त है, वायु स्वच्छ सुखकर है ।
गान भ्रूण का, नृत्य मोर का, दृश्य बड़ा सुन्दर है ।
ऐसी विविध विलक्षणता से सजा प्रकृति का तन है ।
होते क्यों न देखकर इनको हर्ष विमोहित जन हैं ॥ १४ ॥

पकज, रम्भा, मदन, मल्लिका, पोस्त, गुताय, यकुच का ।
रक्तक, कुद-कली, पिक, किंशुक, नरगिस, मधुकर-कुल का ।
समूह है चम्पक शिरोप का घर्म सुरभिमय नारी ।
मानो फूल रही है सुदर घर घर में फुलवागी ॥ १५ ॥
एक-एक तृण धतलाता है जगदीश्वर की सत्ता ।
दयापक है लघु से लघु में भी उसकी विपुल महत्ता ।

एक मधुर सगीत हो रहा है ब्रह्माड-भवन में ।
 उसकी ही ध्वनि गूँज रही है श्रुणु परमाणु गगन में ॥ १६ ॥
 ग्रहगण एक नियत कक्षा में फिरकर स्वर भरते हैं ।
 सदा उसी की पूर्ति-हेतु वे प्रणव-गान करते हैं ।
 आँधी का आवेग, मेघ की गरज, चमक विजली की ।
 पत्तों की सुमधुर मर्मर-ध्वनि, हँसी प्रसून-कली की ॥ १७ ॥
 मरिता का चुपचाप सरकना, दहन-स्वभाव अनल का ।
 मरनों का अविराम नाद, कलकल रव चंचल जल का ।
 मधुरालाप, प्रलाप, विपुल आघोष झुन्ध वारिधि का ।
 भिन्न भिन्न भांषा मनुष्य की उच्चारण बहु विधि का ॥ १८ ॥
 खग, पशु, कीट, पतंग आदि के बोल विभिन्न समय के ।
 हैं सप्त मन्द्र तार स्वर उसके ताल सहायक लय के ।
 चन्द्रपात है थाप उसी की, ऋतुएँ हैं गति उसकी ।
 जीवन है वह अखिल विश्व का, महाप्रलय यति उसकी ॥ १९ ॥
 कैसा सुख-सगीत शांतिप्रद उज्ज्वल अमल विमल है ।
 उसका सुनना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य अटल है ।
 साधु सयमी उसे श्रवण कर भवसागर तरते है ।
 योगी जन सुनकर उसको अमरत्व प्राप्त करते हैं ॥ २० ॥

कहाँ ?

ना मंदिर में, ना मसजिद में, ना गिरजे के आस-पास में,
 ना पर्वत में, ना नदियों में, ना घर बैठे, ना प्रवास में ।
 ना कुजों में, ना उपवन के शांति-भवन या सुख-निवास में,
 ना गाने में, ना ध्यान में, ना आँसू में, नहीं हास में ।
 ना छद्मों में, ना प्रबंध में, अलकार ना अनुप्रास में,
 खोज ले कोई राम मिलेंगे दीन जनो की भूख-प्यास में ।

जागरण

जाग रण ! जाग, निज राग भर त्याग में,
 विश्व के जागरण का तुही चिह्न है ।
 सृष्टि परिणाम है घोर सघर्ष का,
 शांति तो मृत्यु का एक उपनाम है ॥ १ ॥

श्वास-प्रश्वास इस देह क साथ ही
 जन्म ले नित्य के यात्रियों की तरह
 लक्ष्य की ओर दिन-रात गतिवान हैं,
 प्राणधारी नहीं जानता कौन यह ? ॥ २ ॥

सृष्टि के आदि से नित्य रवि और तम
 एक ही वेग से मग्न हैं दौड़ में ।
 छात हो जायँ, पर शांति होंगे न वे
 व्यग्र हैं एक परिणाम की प्राप्ति में ॥ ३ ॥

रात दिन मास ऋतु वर्ष युग कल्प भी
 सृष्टि की आयु के साथ प्रत्येक क्षण
 युद्ध में रुद्ध हैं, क्यों न हम मान लें
 घोर सप्राम ही प्रकृति का ध्येय है ! ॥ ४ ॥

लोक में द्रव्य-जल और श्रम-शक्ति का
 तुमुल सप्राम अनिवार्य है सर्वदा ।
 सत्य है, मानवी जगत् सौंदर्य से
 पूर्ण है, किन्तु है दैन्य की ही कला ॥ ५ ॥

भव्य प्रासाद, रमणीय उद्यान वन,
 नगर अभिराम, द्रुम-पक्तिमय राजपथ ।
 दिव्य आभरण, कमनीय रत्नावली,
 वस्त्र बहु रंग के, यान बहु मान के, ॥ ६ ॥

स्वाद के विविध सुपदार्य, श्रुति और मन-
 हरण प्रिय नाद को क्यों न हम यों कहें,
 व्यापिनी दीनता और सपत्ति के
 घोर सघर्ष के इष्ट परिणाम हैं ॥ ७ ॥

नींद जिस भौंति वता-वृद्धि का हेतु है,
 मृत्यु भी नव्य रण-भूमि का द्वार है,
 चाहती है प्रकृति घोर सघर्ष, तो
 शांति की फल्पना बुद्धि का दैन्य है ॥ ८ ॥

सियारामशरण गुप्त

एक फूल की चाह

[१]

उद्वेलित कर अशु-राशियाँ, हृदय चिताएँ घघकाकर,
 महा महामारी प्रचड हो फैल रही थी इधर-उधर ।
 चीणकठ मृतपत्साओं का करुण रुदन दुर्दान्त नितान्त,
 भरे हुए था निज कृश-रव में हाहाकार अपार अशान्त ।
 घहुत रोकता था सुखिया को, 'न जा खेलने को बाहर',
 नहीं खेलना रुकता उसका नहीं ठहरती वह पल भर ।
 मेरा हृदय कॉप उठता था बाहर गई निहार उसे,
 यही मानता था कि बचा लूँ किसी भँति इस बार उसे ।
 भीतर जो डर रहा छिपाये, हाय ! वही बाहर आया,
 एक दिवस सुखिया के तनु को ताप-तप्त मैंने पाया ।
 खर में विह्वल हो बोली वह, क्या जानूँ किस डर से डर,—
 मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर !

[२]

बेटी, बतला तो तू मुझको, किसने तुझे बतया यह ?
 किसके द्वारा, कैसे, तूने भाव अचानक पाया यह ?
 मैं अछूत हूँ, मुझे कौन हा । मठिर में जाने देगा ?
 देवी का प्रसाद ही मुझको कौन यहाँ लाने देगा ?

वार-वार फिर-फिर तेरा हठ । पूरा इसे करूँ कैसे ?

किससे कहूँ, कौन बतलावे, धीरज हाय । धरूँ कैसे ?

कोमल कुसुम-समान देह हा । हुई तप्त अगारमयी,

प्रतिपल बढ़ती ही जाती है विपुल वेदना व्यथा नई ।

मैंने कई फूल ला-लाकर रखे उसकी खटिया पर,

सोचा,—शात करूँ मैं उसको किसी तरह तो बहलाकर ।

तोड़ मोड़ वे फूल फेंक सब बोल उठी वह चिह्लाकर—

मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर ।

[३]

क्रमशः कठ क्षीण हो आया शिथिल हुए अवयव सारे,

वैठा था नव-नव उपाय की चिन्ता में मैं मन मारे ।

जान सका न प्रभात सजग से हुई अलस कब दोपहरी,

स्वर्ण-घनो में कब रवि डूबा, कब आई सध्या गहरी ।

सभी ओर दिखलाई दी बस अन्धकार की ही छाया,

छोटी-सी बच्ची को प्रसने कितना बडा तिमिर आया ।

ऊपर विस्तृत महाकाश में जलते-से अगारों से,

मुलसी-सी जाती थी आँखें जगमग जगत तारों से ।

देख रहा था—जो सुस्थिर हो नहीं बैठती थी क्षण भर,

हाय । वही चुपचाप पड़ी थी अटल शांति-सी धारण कर ।

सुनना वही चाहता था मैं उसे स्वय ही उकसाकर—

मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर !

[४]

हे मात, हे शिवे, अत्रिके, तप्त ताप यह शान्त करो,
 निरपराध छोटी बच्ची यह, हाय ! न मुझसे इसे हरो !
 काली कान्ति पड गई इसकी, हँसी न जानें गइ फहाँ,
 अटक रहे हैं प्राण चीशतर सोंसो में ही हाय यहाँ !
 अरी निष्ठुरे, बढ़ी हुई ही है यद्वि तरी तृषा नितान्त,
 तो कर ले तू उसे इसी क्षण मेरे इस जीवन से शान्त !
 मैं अछूत हूँ तो क्या मेरी विनती भी हे हाय ! अपूत ?
 उससे भी क्या लग जावेगी तेरे श्रीमदिर को छूत ?
 किसे ज्ञात, मेरी विनती वह पहुँची अथवा नहीं वहाँ,
 उस अपार सागर का दीप्ता पार न मुझको कहीं वहाँ !
 अरी रात, क्या अच्युता का पट्टा लेकर आई तू ?
 आकर अखिल विश्व के ऊपर प्रलय घटा-सी छाई तू !
 पग भर भी न बढ़ी आगे तू, खटकर बैठ गई ऐसी,
 क्या न अरुण आभा जागेगी, सहसा आज विकृति कैसी !
 युग के युग-से जीत गये हैं, तू ज्यो-की-त्यो है लेटी,
 पडी एक करवट फस तू, बोल, बोल, कुछ तो घेंटी !
 वह चुप थी, पर गूँज रही थी उसकी गिरा गगन-भर भर,—
 'मुझका देवी के प्रसाद का एक फूल तुम दो लाकर !'

[५]

“कुछ हो, देवी के प्रसाद का एक फूल तो लाऊँगा,
 हो तो प्रातःकाल, शीघ्र ही मंदिर को मैं जाऊँगा ।

तुम्हपर देवी की छाया है, और इष्ट है यही तुम्हें,

देखूँ, देवी के मंदिर में रोक सकेगा कौन मुझे ।'

मेरे इस निश्चल निश्चय ने मट-से हृदय किया हलका,

ऊपर देखा,—अरुण राग से रजित भाल नभस्थल का

झड़-सी गई तारकावलि थी म्लान और निष्प्रभ होकर,

निकल पडे थे खग नीढो से मानों सुधबुध-सी खोकर

रस्ती-ढोल हाथ मे लेकर निकट कुँ पर जा जल खींच,

मैंने स्नान किया शीतल हो, सलिल-सुधा से तनु को सींच

उज्ज्वल वस्त्र पहन घर आकर अशुचि-म्लानि सब धो डाली,

चन्दन-पुष्प कपूर-धूप से सज ली पूजा की थाली

सुरिया के सिरहाने जाकर मैं धीरे-से खडा हुआ,

आँखें मँपी हुई थीं, मुख भी मुरझा-सा था पडा हुआ ।

मैंने चाहा,—उसे चूम लूँ, किन्तु अशुचिता से डरकर,

अपने वस्त्र सँभाल, सिकुडकर गडा रहा कुछ दूरी पर ।

वह कुछ-कुछ मुसकाई सहसा, जानें किन स्वप्नों में लग्न,

उसकी वह मुसकाहट भी हा । कर न सकी मुझको मुद-मग्न ।

अक्षम मुझे समझकर क्या तू हँसी कर रही है मेरी ?

घटो, जाता हूँ मंदिर में आज्ञा यही समझ तेरी ।

उसने नहीं कहा कुछ, मैं ही धोल उठा तन धीरज धर,—

तुम्हको देवी के प्रमाद का एक फूल तो दूँ लाकर ।

[६]

हैंचे शैल शिखर के ऊपर मन्दिर था विस्तीर्ण विशाल,
 स्वर्ण-कलश-सरसिज विहसित थे पाकर समुदित रवि-कर-जाल ।
 परिक्रमा-सी कर मंदिर की ऊपर से आकर कर कर,
 वहाँ एक करना करता था कल-कल मधुर गान कर कर ।
 पुष्पहार-सा जँचता था वह मंदिर के श्रीचरणों में,
 झुटि न दीसती थी भीतर भी पूजा के उपकरणों में ।
 दीप धूप से आमोदित था मंदिर का आँगन सारा,
 गूँज रही थी भीतर-बाहर मुखरित उत्सव की धारा ।
 भक्त-वृन्द मृदु मधुर कठ से गाते थे सभक्ति मुदमय,—
 'पतित-त्तारिणी पाप-हारिणी, माता, तेरी जय जय-जय ।'
 'पतित-त्तारिणी, तेरी जय-जय,'—मेरे मुख से भी निकला,
 बिना बड़े ही मैं आगे को जाने किस बल से ढिकला ।
 माता, तू इतनी सुन्दर है, नहीं जानता था मैं यह
 माँ के पास रोक बच्चों की, कैसी विधि यह तू ही कह ?
 आज स्वयं अपने निदेश म तूने मुझे बुलाया है,
 तभी आज पापी अटूत यह श्रीचरणों तक आया है ।
 मेरे दीप-फूल लेकर वे अम्बा को अपित करके
 किया पुजारी ने प्रसाद जय आगे को अजलि भरके,
 भूल गया उसका लेना भट्ट, परम लाभ-सा पाकर मैं,
 सोचा,—बेटी को माँ के ये पुण्य-पुष्प दूँ जाकर मैं ।

[७]

सिंह-पौर तक भी आँगन से नहीं पहुँचने में पाया,
 सहसा यह सुन पडा कि—“कैसे यह अछूत भीतर आया ?
 पकडो, देखो भाग न जावे, बना धूर्त यह है कैसा, -
 साफ-स्वच्छ परिधान किये है, भले मानुषों के जैसा !
 पापी ने मन्दिर में घुसकर किया अनर्थ बडा भारी,
 कलुपित कर दी है मन्दिर की चिरकालिक शुचिता सारी ।”
 ऐं, क्या मेरा कलुप बडा है देवी की गरिमा से भी,
 किसी बात में हूँ मैं आगे माता की महिमा के भी ?
 माँ के भक्त हुए तुम कैसे करके यह विचार खोटा ?
 माँ के सम्मुख ही माँ का तुम गौरव करते हो छोटा ।
 कुछ न सुना भक्तों ने, मूढ-से मुझे घेरकर पकड लिया,
 मार-मारकर मुझे-घूँसे धम-से नीचे गिरा दिया ।
 मेरे हाथों से प्रसाद भी थिरार गया हा । सबका सब,
 हाय ! अभागी वेदी, तुम तक कैसे पहुँच सके यह अब ?
 मैंने उनसे कहा,—दड दो मुझे मारकर, ठुकराकर,
 बस यह एक फूल कोई भी दो बच्ची को ले जाकर ।

[८]

न्यायालय ले गये मुझे वे, सात दिवस का दड-विधान
 मुझको हुआ, हुआ था मुझसे देवी का महान अपमान ।
 मैंने स्वीकृत किया दड वह शीश झुकाकर चुप ही रह,
 उस असीम अभियोग; दोष का क्या उतर देता, क्या कह ?

सात रोज ही रहा जेल में या कि वहाँ सदियों वीर्ती ।

अविश्रात बरसा करके भाँ आँसू तनिक नहीं रीती ।

कैदी कहते—“अरे मूर्ख, क्यों ममता थी मंदिर पर ही ?

पास वहाँ मसजिद भी तो थी, दूर न था गिरजाघर भी ।”

कैसे उनको समझाता मैं, वहाँ गया था क्या सुख से,

देवी का प्रसाद चाहा था बेटी ने अपने मुख से ।

[९]

दड भोगकर जब मैं छूटा, पैर न उठते थे घर का,

पीछे ठेल रहा था कोई भय-जर्जर तनु-पजर को ।

पहले की-सी लेने मुझको नहीं दौड़कर आई वह,

उलझी हुई खेल में ही हा । अबकी दी न दिखाई वह ।

उसे देखने मरघट को ही गया दौड़ता हुआ वहाँ,—

मेरे परिचित बन्धु प्रथम ही फूँक चुके थे उसे जहाँ ।

चुम्बी पड़ी थी चिता वहाँ पर छाती धधक उठी मेरी,

हाय ! फूल-सी कोमल बची हुई राख की थी डेरी ।

अन्तिम बार गोद में बेटी, तुमको ले न सका मैं हा ।

एक फूल माँ का प्रसाद भी तुमको दे न सका मैं हा ।

वह प्रसाद देकर ही तुमको जेल न जा सकता था क्या ?

तनिक ठहर ही सत्र जन्मों के दड न पा सकता था क्या ?

बेटी की छोटी इच्छा वह कहीं पूर्ण मैं कर देता,

तो क्या अरे दैव, त्रिभुवन का सभी विभव मैं हर लेता ?

यहीं चिता पर धर दूँगा मैं, कोई अरे सुनो, बर दो,—

मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही लाकर दो !

गोपालशरणसिंह

शिशु की दुनिया

[१]

माना सदा जाता रजनीश है खिलौना वहाँ,
 बनता तमाशा वहाँ नित्य अशुमाली है ।
 डाले हुए पैर का अँगूठा मुख में मनोझ,
 आता वहाँ याद शिशु-रूपी घनमाली है ।
 लाली अनुराग की सदैव रहती है वहाँ,
 रसती उजाला वहाँ चन्द्र-मुखवाली है ।
 बनते मनुज भी हैं हाथी और घोडा वहाँ,
 शिशु । सचमुच तेरी दुनिया निराली है ॥

[२]

छाई रहती है सदा सुख की घटा यो वहाँ,
 होती कभी चित्त से न दूर हरियाली है ।
 चिन्ता दुख शोक वहाँ आने नहीं पाते कभी,
 करती सदैव वहाँ माता रसवाली है ।
 मोह मद मत्सर का होता न प्रवेश वहाँ,
 रहता न कोई वहाँ कपटी कुचाली है ।
 राजा है न कोई वहाँ रानी है न कोई वहाँ,
 शिशु । सब भ्रांति तेरी दुनिया निराली है ॥

घनश्याम

[१]

श्यामल है नभ श्याम महीतल, श्याम महीरुह भो अभिराम हैं ।
 श्यामल नीरधि-नीर मनोहर, नीरद नीरज श्याम ललाम हैं ।
 श्यामल हैं वन वाग सरोवर, श्यामल शैल महा छवि धाम हैं ।
 कौन भला कह है सकता, इसमे उसमे किसमे घनश्याम हैं ॥

[२]

हों अथवा वह हों न कहीं पर, हों, सबके मन में घनश्याम हैं ।
 सुन्दर श्याम-सरोरुह से छवि-धाम विलोचन में घनश्याम हैं ।
 हैं करते अविराम विहार, छिपे उर-कानन में घनश्याम हैं ।
 जीवन-दायक हैं घन के सम, जीवन जीवन में घनश्याम हैं ॥

ताजमहल

मानों-सा प्यडा है अभिमानी निज गौरव का,
 सबमुच ताज तेरा जग में न सानी है ।
 तुम्हको विलोक फल मिलता विलोचन का,
 आती याद शिल्प-कला रुचिर पुरानी है ।
 बादशाह शाहजहाँ मुमताज बेगम की,
 रह गया तू ही एक प्रीति की निशानी है ।
 फलकल-नादिनी कलिन्दजा मुनाके तुम्हें,
 कह रही मानों वही प्रेम की पहानी है ॥

वह छवि

मञ्जुल मयक में, मयकमुखी-आनन में,

वैसी निष्कलक कान्ति देती न दिखाई है ।

दृग भ्रिप जाते, देख पाते हम कैसे उसे,

ऐसी प्रभा किसने प्रभाकर में पाई है ।

न्यारी तीन लोक से है प्यारी सुखकारी भारी,

सारी मनोहारी छटा उसमें समाई है ।

जिसको विलोक फीकी शरद-जुन्हाई होती,

वह मनभाई छवि किसको न भाई है ॥ १ ॥

नित्य नई शोभा दिखलाती है लुभाती वह,

किसमे सलोनी सुघराई कहो, ऐसी है ।

केतकी की, कुन्द की, कदम्ब की कथा है कौन,

कल्पलतिका में कहों कान्ति उस जैसी है ।

रति में, रमा में रमणीयता कहों है वैसी,

कनक-लता में कमनीयता न वैसी है ।

छहर छहर छहराति है छवीली छटा,

आहा, वह सुघर सजीली छवि कैसी है ॥ २ ॥

सुपमा उसी की अधलोकके सुधाकर में,

रूप-सुधा पीकर चकोर न अधाते हैं ।

घन की घटा में नव निरस उसी की छटा,

मञ्जुल मयूर होते मोद-मद-माते हैं ।

फूलों में उसी की शोभा देखके मिलिन्द-वृन्द

फूले न समाते, "गुन-गुन" गुण गाते हैं ।

दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी

प्रेम से प्रफुल्लित पतङ्ग जल जाते हैं ॥ ३ ॥

उसको विलोक दामिनि है छिप जाती शीघ्र,

अति मनभावनी भी भामिनी लजाती है ।

उसके समीप दीपमालिका न भाती चरा,

मञ्जु-भण्डि-मालिका भी नेक न सुहाती है ।

निज हीनता है मोतियों से सही जाती नहीं,

उनकी इसी से छिद जाती क्या न छाती है ।

वह छवि देख-देख दृष्टि वृष्टि पाती नहीं

मनों स्वयं प्रेम-वश उममें समाती है ॥ ४ ॥

कञ्ज-कलिका में नहीं सुपमा मयङ्क की है,

कोमलता कज की मयङ्क ने न पाई है ।

चपक-कली में न सुवर्ण की सुवर्णता है,

चम्पक की चारुता सुवर्ण में न आई है ।

रत्न की रुचिरता में, मणि की मनोज्ञता में,

एक-दूसरे की प्रभा देवी न दिखाई है ।

समकी निफाई सुधराई मोदादायी महा,

ललित लुनाई उस छवि में समाई है ॥ ५ ॥

तेजधारियों में है कृशानु का भी मान बढ़ा,

किन्तु तेजवान है ।

पादपों में पारिजात, पर्वतों में हिमवान,
 नदियों में जाह्नवी मनोज्ञता की रान है ।
 मोर-सा मनोहर न कोई रग रूपवान,
 फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है ।
 यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके,
 किन्तु उस छवि-सा न कोई छविमान है ॥ ६ ॥

वन-उपवन में, सरोज में, सरोवर में,
 सुमन-सुमन में, उसी की सुधराई है ।
 चम्क चमेलियों में, नवल नवेलियों में,
 ललित लताओं में भी उसकी लुनाई है ।
 देख पड़ती है रग-रग के विहङ्गमों में,
 सुपमा उसी की कुज-कुज में समाई है ।
 सब ठौर देखो, वह छवि दिखलाई देती,
 उर में समाई तथा लोचनों में छाई है ॥ ७ ॥



वियोगी हरि

वीर-वत्तीसी

जयतु कस करि-केहरी । मधु रिपु । केशी-काल ।
 कालिय मठ-मर्दन । हरे । केशव । कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥
 आदि मध्य अवसान हूँ जामें उदित उद्गाह ।
 सुरस वीर इकरस सदा सुभग सर्वरस-नाह ॥ २ ॥
 खड-खड है जाय बरु देतु न पाछें पेंड़ ।
 लरत सूरमा रेत की भरत न छाँड़तु मेड ॥ ३ ॥
 खल-खडन, मडन सुजन, सरल, सुहृद, सविवेक ।
 गुण-गँभीर, रण-सूरमा मिलतु लाख में एक ॥ ४ ॥
 मुँहमोंगे रण-सूरमा देतु दान पर-हेतु ।
 सीस-दान हूँ देतु पै पीठि-दान नहिं देतु ॥ ५ ॥
 दया-धर्म जान्यौ तुहीं सब धर्मनु कौ सार ।
 नृप शत्रि । तेरे दान पै बलि हूँ बलि सौ वार ॥ ६ ॥
 दल्यौ अहिंसा-अस्त्र लै दनुज दु रा करि युद्ध ।
 अजय मोह-गज-केसरी जयतु तथागत बुद्ध ॥ ७ ॥
 मृत-रोहित-पट-दानु लै धारथौ धर्म अमन्द ।
 खड्ग-धार ब्रत धीर, धनि सत्य-गीर हरिचन्द ॥ ८ ॥
 किधौँ उच हिम शृंग-धर किधौँ जलधि गभीर ।
 किधौँ अटल तु कै दान-वीर मति धीर ॥ ९ ॥

सुरतरु लै क्रीजै रुहा अरु चिन्तामणि ठेरु ।
 इक दधीचि की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेरु ॥ १० ॥
 केसरिया वागो पहिरि, कर ककण, उर माल ।
 रण-दूलह । वरि लाइयौ दुलहिन विजय-सुवाल ॥ ११ ॥
 धनि धनि, सो सुकृती व्रती, सूर-सूर, सतस्रध ।
 रङ्ग खोलि खुलि रेत पै खेलतु जासु कवध ॥ १२ ॥
 लरतु काल सो लारस में कोई माई कौ लाल ।
 कहु, केते करवाल को करत कठ-कलमाल ॥ १३ ॥
 रण-सुभट्ट वै सुट्ट-लौं गहि असि कट्टत मुड ।
 उठि कवध जुट्टत कहूँ, कहूँ लुट्टत रिपु-रुड ॥ १४ ॥
 लोहित-लथपथ देखिकै खड-खड तन-त्रान ।
 निकसत हुलसत युद्ध मे बडभागिनु के प्रान ॥ १५ ॥
 कादर तौ जीवित भरत दिन में धार हजार ।
 प्रान-परेरु वीर के उडत एक हीं चार ॥ १६ ॥
 जगी जोति जहँ जूझ की रगी रङ्ग खुलि भूमि ।
 रँगी रुधिर सों धूरि, सो धन्य धन्य रण भूमि ॥ १७ ॥
 अनल कुड, असि-वाए, कै रकँत रँग्यौ रण-रेत ।
 त्रय तीरथ तारण-तरण छिति छत्रिय-त्रिय-हेत ॥ १८ ॥
 सुभट-सीस-सोनित-सनी सम-भूमि । धनि-धन्य ।
 नहिं तो सम तारण-तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य ॥ १९ ॥
 नमो-नमो कुरु-खेत । तुव महिमा अकथ अनूप ।
 कण-कण तेरो लेखियतु सहस-तीर्थ-प्रतिरूप ॥ २० ॥

धोय सीसु सान्यौ सदा हृदय-रक्त रण-सेत ।
 वीग-कृपक कीरति लही करी मही जस-सेत ॥ २१ ॥
 हिन्दू-कवि, हिन्दुवान-कवि, हिन्दी-कवि रसकद ।
 सुकवि, महाकवि, सिद्धकवि, धन्य धन्य कवि चन्द ॥ २२ ॥
 सिवा सुजस-सरसिज सुरस मधुकर मत्त अनन्य ।
 रस भूपण-भूपण, सुकवि-भूपण, भूपण धन्य ॥ २३ ॥
 लहरति चमकति चात्र सों तुव तरवार अनूप ।
 धाय डसति, चौंधति चरनु, नागिनि दामिनि रूप ॥ २४ ॥
 वह शकुन्तला-लाडिनो कवतें मोंगु रोय ।
 "रङ्ग-खिलौना खेलिबे अग्रहि लाय वै भोय" ॥ २५ ॥
 कही माय मुख चूमिकें कर गहाय करवाल ।
 "जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल । ॥ २६ ॥
 चूर-चूर है अत लौं रखियौ कुल की लाज ।
 जननि-दूध पितु-रङ्ग की अहै परिच्छा आज" ॥ २७ ॥
 गावत गायक वीन लै निरहो राग निहाग ।
 "आहि अलापत आजु क्यों मगल मारु राग ॥ २८ ॥
 लावत रेंगि रेंगरेज । क्यों पगिया रग निरग ?
 अत्र तौ, बस, भावतु वहै सुदर रग सुरग ॥ २९ ॥
 जियत बाध की पीठि पै धनु-धारीनु चढाय ।
 क्यों न, चितेरे । चित्र तूँ उमंगि उतारत आय ? ॥ ३० ॥
 प्रकृत-वीर कौ अतहूँ परतु मद नाह बेज ।
 नहिं चाहतु चदनचिता भीष्म छँडि सर-सेज ॥ ३१ ॥

मिली हमें यमोंपिली* ठौर ठौर चहुँपास ।
लेखिय राजस्थान में लाखनु ल्यूनीडासा † ॥ ३२ ॥

वीर-बाहु

समर-प्रमत्त कैधों द्विरद-दुरूह-सुड,
 वद्धत अरुद्ध क्रुद्ध तत्तक धों युग्मचड ।
 मथन समोद रौद्र-उदधि कराल कैधों,
 मदर अमद, कै पुरदर के वष्य बड ।
 प्रबल महान मान-मडन घमड-युक्त,
 युद्ध-मध्य खडन अरुड रल खड-रड ।
 छत्र-दड दीनन कों, दुष्टन कों काल-दड,
 अतुल उदड वीर । तेरे वर बाहु-दंड ॥ १ ॥

प्रलय अकाल हैहै धरनि पताल जैहै,
 दसहु दिसान मे कृसानु कोपि दैहै दाहु ।
 मलिन दिनेस हैहै धाय नखतेमहू कों,
 लपकि सुलीलि जैहै प्रखर प्रताप-राहु ।
 रुधिर विभार युद्ध-कालिका कलोल-भरी,
 सुभट-सुमुडन की धारि माल लैहै लाहु ।

* यूनान देश की एक इतिहास प्रसिद्ध घाटी । —स०

† प्राचीन यूनान का एक सुप्रसिद्ध वीर । —स०

करत कहा धौं आज एरे रणमत्त । तेरे

फरकि उठे हँ फेरि वे ही क्रातिकारी बाहु ॥ २ ॥

अधम अधर्म-मत्त म्लेच्छ आततायिन के

सीस भूरि भजिये कौ एही एक गाज है ।

निपट निसक जन्म रकन को राज एही,

माथ पै अनाथन के एही एक ताज है ।

रायगढ़-ईस । विसे बीस लागी याही ठाँव,

आर्य धर्मधारिन औ नारिन की लाज है ।

निबल-उधारिवे को, आज हिंद-तारिवे कौं

साहि के सपूत । तेरी बाँह ए जहाज है ॥ ३ ॥

नाचि-नाचि निलज नपेलिन के सग नीच,

हाय-हाय, ऐसे भुज-दड क्यों लजावै रे ।

हृदय लगाय दीन-दलित, अनाथ-माथ

सदय सुबाँह छत्र-छाँह क्यों न छावै रे ।

गेरि-गेरि कामिनि के कठ घोर बाहुन कौं,

मानिकें मृणाल मजु माल क्यों बनावै रे ।

अमित अधर्म देखि-देखि हू अनीति अध,

कुलिस-कठोर क्यों न बाहु तू उठावै रे ? ॥ ४ ॥

बाहु तौ सराहिए प्रताप रन-बाँकुरे के,

बडग चढाए रखल-सीस जिन खेलि-खेलि ।

बाहु तौ सराहिए समर्थ सिवराजजू के,

सहज स्वराज फेरि थाप्यौ रिपु ठेलि-ठेलि ।

बाहु तौ सराहिए गोविन्द वीर-केसरी के,
 यवन कृतात-कुड होमे जिन मेलि-मेलि ।
 बाहु तौ सराहिए वुँदेल छत्रसालजू के,
 मुगल मरोरि मींजि डारे जिन पेलि-पेलि ॥ ५ ॥
 मसकि मरोरि फोरि-फोरि शत्रु-वज्र-सीस
 समर-सुरग-फाग खेली जिन साजि साज ।
 आर्य-कुल-नारिन की, खड्ग-व्रतधारिन की
 लोक-लोक साखी थापि राखी जिन धर्म-लाज ।
 सबल-सनाथन पै गाज-से गिरे जे आय,
 अबल-अनाथन के माथे के बने हैं ताज ।
 सहित उद्याहु भेंटि-भेंटि वीर-बाहु ऐसे,
 हृदय चढाय प्रेम-आरती उतारौ आज ॥ ६ ॥



सुमित्रानन्दन पन्त

धादल

सुरपति के हम ही हैं अनुचर,

जगत्प्राण के भी सहचर,

मेघदूत को सजल कल्पना,

चातक के चिर-जीवनधर,

मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,

सुभग स्वाति के मुक्ताकर,

विहग-वर्ग के गर्भ-विधायक,

कृपक-वालिका के जलधर ।

जलाशयों में कमलदलों-सा

हमें खिलाता नित दिनकर,

पर बालक-सा धायु सफल दल

निग्वरा देता, चुन सत्वर;

लघु लहरों के चल पलनों में

हमें मुन्नाता जन सागर,

वही चील-सा झपट, बाँह गह,

हमको ले जाता ऊपर ।

भूमि-गर्भ मे छिप विहङ्ग-से,
 फैला कोमल रोमिल पद्म,
 हम असख्य अस्फुट बीजों में
 सेते साँस, छुडा जड पद्म,

विपुल कल्पना से त्रिभुवन की
 विविध रूप धर, भर नभ-अङ्क
 हम फिर क्रीडा-कौतुक करते,
 छा अनन्त-उर मे निशङ्क ।

कभी चौकड़ी भरते मृग-से
 भू पर चरण नहीं धरते,
 मत्त मंतङ्गज कभी भूमते,
 सजग शशक नभ को चरते,

कभी कीश-से अनिल-डाल में
 नीरवता से मुँह भरते,
 वृहत्-गृह-से विहग-छदों को
 विपराते नभ में तरते ।

कभी अचानक भूतों का-मा
 प्रकटा विकट महा-आकार,
 कड़क, कड़क, जव हँसते हम सब,
 थरा छठता है संसार,

फिर परियों के वशो-से हम
सुभग सीप के पद्व पसार,
समुद्र परते शुचि-ज्योत्स्ना में,
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार ।

अनिल विलोदित गगन-सिन्धु में
अलय-वाद-से चारों ओर
चमड़ चमड़ हम लहराते हैं
चरसा उपल, तिमिर घनघोर,

घात घात मे, तूल-तोम-सा
व्योम विटप से झटक, झकोर,
हमें उडा ले जाता जब द्रुत
दल-बल युत घुस बातुल-चोर ।

बुद्बुद्-द्युति तारक-दल-त्तरलित
तम के यमुना-जल मे श्याम
हम विशाल जम्वाल-जाल-से
चहते हैं अमूल, अविराम,

दमयन्ती-सी कुमुद-कला के
रजत-करो में फिर अभिराम
स्वर्ण-हस-से हम मृदु ध्वनि कर,
कहते प्रिय-सन्देश ललाम ।

दुहरा विद्युद्दाम चढा द्रुत,
 इन्द्र-धनुष की कर टङ्कार,
 विकट पटह-से निर्घोषित हो,
 वरसा विशिखों-सा आसार,
 चूर्ण चूर्ण कर वज्रायुध से
 भूधर को, अति भीमाकार
 मदोन्मत्त वासव-सेना-से
 करते हम नित वायु-विहार ।

स्वर्ण भृग-तारावलि वेष्टित,
 गुञ्जित, पुञ्जित, तरल, रसाल,
 मधुगृह-से हम गगन-पटल मे
 लटके रहते विपुल विशाल,
 जालिक-सा आ अनिल, हमारा
 नील-सलिल में पैला जाल,
 उन्हें फाँस लेता फिर सहसा
 मीनों के-से चञ्चल बाल ।

व्योम-विपिन में जब वसन्त-सा
 ग्विलता नव-पल्लविते प्रभात
 बहते हम तत्र अनिल-स्रोत मे
 गिर तमाल तम के-से पात,

उदयाचल से बाल-हस फिर
 उड़ता अम्वर में अवदात,
 फैल खर्णपट्टों से हम भी
 फरत द्रुत मारुत से बात ।

सन्ध्या का मादक पराग पी,
 भूम मलिन्दों-से अभिराम,
 नभ के नील-कमल मे निर्भय
 करते हम विमुग्ध विश्राम,

फिर बाह्य-से सान्ध्य सिन्धु में
 सुलग, मोल उसको अविराम,
 त्रिगरा देते तारावलि-से
 नभ मे उसके रत्न निकाम ।

धीरे धीरे सशय से उठ,
 बढ अपयश से शीघ्र अछोर,
 नभ के उर में उमड मोह से
 फैल लालसा से निशि-भोर,

इन्द्रचाप-सी व्योम-भृकुटि पर
 लटक मौन-चिन्ता से घोर,
 घोष-भरे विप्लव-भय से हम
 छा जाते द्रुत चारों ओर ।

पर्वत से लघु धूलि, धूलि से
 पर्वत वन, पल मे, साकार—
 काल-चक्र-से चढते, गिरते,
 पल मे जलधर, फिर जल-धार,

कभी हवा मे महल बनाकर,
 मेतु बाँधकर कभी अपार,
 हम विलीन हो जाते सहसा
 विभव-भूति ही-से निस्सार ॥

नम्र गगन की शाखाओ में
 फैला मकड़ी का-सा जाल,
 अम्बर के उडते पतङ्ग को
 उलझा लेते हम तत्काल,

फिर अनन्त-उर की करुणा से
 त्वरित द्रवित होकर, उत्ताल-
 आतप मे मूर्च्छित कलियों को
 जाग्रत करते हिम-जल डाल ।

हम सागर के धवल हास हैं,
 जल के धूम, गगन की धूल,
 अनिल-फेन, ऊषा के पल्लव,
 वारि-वसन, वसुधा के मूल,

नभ मे अवनि, अवनि मे अम्बर,
सलिल-भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल मे थल, थल मे जल,
दिन के तम, पावक के तूल ।

व्योम-बेलि, ताराओं की गति,
चलते अचल, गगन के गान,
हम अपलक तारों की तन्द्रा,
ज्योत्स्ना के हिम, शशि के खान,

पवन घेनु, रवि के पाशुल श्रम,
सलिल-अनल के विरल वितान,
व्योम-पलक, जल-रजग, बहते थल,
अम्बुधि की कल्पना महान ।

धूम-धुँआरे, काजर-कारे,
हम ही विकरारे वादर,
मदन-राज के वीर बहादर,
पावस के उडते फणधर,

चमक कामकमय मंत्र वशीकर,
छहर-घहरमय विष-सीकर,
स्वर्ग सेतु-से इन्द्रघनुप घर,
कामरूप घनश्याम अमर ।

सुभद्राकुमारी चौहान

मेरा नया बचपन

बार बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी ।
 गया, ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी ॥
 चिन्ता-रहित खेलना खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द ।
 कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनन्द ? ॥
 ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था, छुआ-छूत किसने जानी ?
 बनी हुई थी अहा ! भौंपडी और चीथडों में रानी ॥
 किये दूध रु कुल्ले में, चूस अँगूठा अमृत पिया ।
 किलकारी कल्लोल मचाकर सूना घर आवाह किया ॥
 रोना और मचल जाना भी क्या आनन्द दिखाते थे ।
 बड़े-बड़े मोती-से आँसू जयमाला पहनाते थे ॥
 मैं रोई, माँ काम छोड़कर आई, मुझको उठा लिया ।
 माड-पोंछकर चूम-चूम गीले गालों को सुखा दिया ॥
 दादा ने चन्दा दिखलाया, नेत्र-नीर द्रुत दमक उठे ।
 धुली हुई मुसकान देखकर सके चेहरे चमक उठे ॥
 वह सुख का साम्राज्य छोड़कर मैं मतवाली बडी हुई ।
 लुटी हुई, कुछ ठगी हुई-सी, दौड द्वार पर खडी हुई ॥
 राज-भरी आँखें थीं मेरी, मन में उमंग रँगिली थी ।
 तान रसीली थी फानों में, चंचल छैल छवीली थी ॥

दिल में एक चुभन सी थी यह दुनिया सत्र अलबेली थी ।
 मन में एक पहेली थी, मैं सत्रके बीच अकेली थी ॥
 मिला, रोजती थी जिसको, हे वचपन ! ठगा दिया तूने ।
 अरे ! जवानों के फन्दे मे मुझका फँसा दिया तूने ॥
 सब गलियों उसकी भी दर्जों, उसकी सुशियों न्यारी हैं ।
 प्यारी-प्रीतम की रँगरलियों की भी स्मृतियों प्यारी हैं ॥
 माना मैंन युवा-काल का जीवन खून निराला है ।
 आकाशा, पुरुषार्थ, ज्ञान का उदय मोहनवाला है ॥
 किन्तु यहाँ झगड़ है भारी, युद्ध-क्षेत्र ससार बना ।
 चिन्ता क चकर में पडकर जीवन भी है भार बना ॥
 आजा वचपन ! एक नार फिर दे दे अपनी निर्मल शान्ति ।
 व्याकुल व्यथा मिटानवाली वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति ॥
 वह भोली-सी मधुर सरलता वह प्यारा जीवन निपाप ।
 क्या फिर आकर मिटा सकेगा तू मेरे मन का सताप ? ॥
 मैं वचपन को गुला रही थी, घोल उठी रिटिया मेरी ।
 नदन घन-मी फूल उठी यह छोटी सी छुटिया मेरी ॥
 “मैं ओ” कहकर गुला रही थी, मिट्टी साकर आई थी ।
 कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे पिलान आई थी ॥
 पुलक रहे थे अंग, रंगों में फौतूहल था छतक रहा ।
 मुग्न पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-नार का झलक रहा ॥
 मैंने पूछा—‘यह क्या लाई ?’ बोल उठी वह ‘मैं, फाओ’ ।
 हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा—‘तुम्हीं साओ’ ॥

पाया मैंने वचपन फिर से, वचपन बेटी बन आया ।
 उसकी मजुल मूर्ति देखकर मुझमें नवजीवन आया ॥
 मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ तुतलाती हूँ ।
 मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥
 जिसे खोजती थी बरसों से, अब जाकर उसको पाया ।
 भाग गया था मुझे छोड़कर, वह वचपन फिर से आया ॥

डुकरा दो या प्यार करो

देव । तुम्हारे कई उपासक कई ढग से आते हैं ।
 सेवा में बहुमूल्य भेंट वे कई रंग के लाते हैं ॥
 धूमधाम से, साजवाज से मंदिर में वे आते हैं ।
 मुक्ता-मणि बहुमूल्य वस्तुएँ लाकर तुम्हें चढाते हैं ॥
 मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लाई ।
 फिर भी साहस कर मंदिर में पूजा करने को आई ॥
 धूप-दीप-नैवेद्य नहीं है, भोंकी का शृङ्गार नहीं ।
 हाथ । गले में पहनान को फूलों का भी हार नहीं ॥
 मैं कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी, है स्वर में माधुर्य नहीं ।
 मन का भाव प्रकट करने को वाणी में चातुर्य नहीं ॥
 नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई ।
 पूजा की विधि नहीं जानती, फिर भी नाथ । चली आई ॥

पूजा और पुजापा प्रसुवर । इसी पुजारिन को समझो ।
 दान-दक्षिणा और निद्रावर इसी भित्तारिन को समझो ॥
 मैं उन्मत्त, प्रेम का लोभी हृदय दिखाने आई हूँ ।
 जो कुदृष्ट है, बस यही पास है, इसे चढाने आई हूँ ॥
 चरणों पर अर्पण है, इसको चाहो तो स्वीकार करो ।
 यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो ॥

फूल के प्रति

डाल पर के गुरमाये फूल । हृदय में मत कर वृथा गुमान ।
 नहीं हैं सुमन कुज में अभी, इसी से है तेरा सम्मान ॥
 मधुप जो करते अनुनय विनय बने तेरे चरणों के दास ।
 नई कलियों को दिलली देख नहीं आवेंगे तेरे पास ॥
 सहेगा वह कैसे अपमान ? उठेगा वृथा हृदय में शूल ।
 मुलावा है, मत करना गर्व, डाल पर के गुरमाये फूल ॥



महादेवी वर्मा

उम पार

घोर तम छाया चारो ओर
 घटाएँ धिर आई घनघार,
 वेग मारुत का है प्रतिकूल
 हिले जाते हैं पर्वतमूल,
 गरजता सागर धारम्धार,
 कौन पहुँचा देगा उस पार ?

तरङ्गें उठीं पर्वताकार
 भयकर करतीं हाहाकार,
 अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
 तरी का करते हैं उपहास,
 हाथ से गई ड्रट पतवार,
 कौन पहुँचा देगा उस पार ?

प्रास करने नौका, स्वच्छद
 घूमते फिरते जलचर-वृन्द,
 देखकर काला सिन्धु अनन्त
 हो गया हा साहस का अन्त !
 तरङ्गें हैं उचाल अपार,
 कौन पहुँचा देगा उस पार ?

बुझ गया वह नक्षत्र-प्रकाश

चमकती जिसमें मेरी आश,

रैन बोली सज कृष्ण दुकूल

विसर्जन करो मनोरथ फूल,

न लाये कोई कर्णाधार,

कौन पहुँचा देगा उस पार ?

सुना था मैंने इसके पार

बसा है सोने का ससार,

जहाँ के हँसते विहग ललाम

मृत्यु छाया का सुनकर नाम,

धरा का है अनन्त शृङ्गार,

कौन पहुँचा देगा उस पार ?

जहाँ के निर्कर नीरख गान

सुना करते अमरत्व प्रदान,

सुनाता नभ अनन्त मङ्गार

बजा देता है सारे तार;

भरा जिसमें असीम-सा प्यार,

कौन पहुँचा देगा उस पार ?

पुष्प में है अनन्त मुस्कान
 त्याग का है मारुत में गान,
 सभी में है स्वर्गीय विकाश
 वही कोमल कमनीय प्रकाश,
 दूर कितना है वह संसार ।

कौन पहुँचा देगा उस पार ?

x x x x

सुनाई किसने पल में ध्यान
 कान मे मधुमय मोहक तान ?
 'तरी को ले जाओ मँझधार
 हूबकर हो जाओगे पार,
 विसर्जन ही है कर्णधार,

वही पहुँचा देगा उस पार ।'



राय कृष्णदास

चातक

पछी जग केते दर्ई दर्ई जिन्हे रूपरासि,
 सुरहू दिए हैं हठि हियो जानै छोरि लेत ।
 भावै पै न मोहि कोउ इतो जितो चातक जो
 आपनी पुकार ही में आपुनो दरस देत ॥
 आजु लौ न पेख्यो जाहि कैसो रूप कैसो रंग,
 है अराल कै कराल जानै किधो स्याम-सेत ।
 पूरन पढी पै जाने पाटी प्रेम की पुनीत,
 जानत जो रीत कैसें जात है निनाह्यो हेत ॥

समर्थन

खव किया, जो तुमने इसको ला पिंजडे में बंद किया ।
 चारा चुगने को बेचारा,
 दर-दर फिरतु मारा-भारा,
 दूध-भात बैठा खाता है, आहा ! क्या आनंद दिया,
 तरु-कोटर-वामी निरीह को मर्यासन-आसीन किया ।
 वन विहंग को सुजन बनाया,
 घातचीत करना सिरपलाया,
 राम-नाम का मजा चखाया, अमर किया, स्वार्धीन किया ।

वेणु की विनती

भृग, गुजरित भृग, तनिक यह मेरी विनती कान धरो ।
 बस, तुम मेरा हृदय वेध दो, फिर गुन गुन गुन-गान करो ॥
 यह क्या कहा, क्रूरता होगी, नहीं, अतीव दया होगी ।
 छिद्र-पूर्ण होन पर भी मैं हूँगा दुर्लभ सुख-भोगी ॥
 उन गन्धों में वह मारुत वह प्रियतम का निश्वास भरे ।
 स्वर से मेरे शून्य हृदय की व्यथा-कथा जो व्यक्त करे ॥
 धारण किये हुए मैं जिसको मर्मर करके भरता हूँ ।
 ध्यान नहीं देता कोई भी लार यत्र मैं करता हूँ ॥
 तुम मधुकर हो, दया-मया कर मुझको यह मधु-दान करो ।
 भृग, गुजरित भृग, तनिक यह मेरी विनती कान धरो ॥

पदस्थ

चाह मुझको है नहीं मर्णा वन जाने की ।
 यद्यपि हूँ जानता कि कचन हो पाऊँ तो
 मौलि का तुम्हारे अलङ्कार वन जाने की
 बात क्या, मरूपता तुम्हारी मिल जायगी

अहोभाग्य धन्य हो नगण्य यह जन, पै
 हाय ! हिया क्षुद्र इसका तो है सिहरता
 कमने के साथ ही कमौटी पै, कनक की
 कान्ति,—भ्रान्ति चणदा-छटा की घटा श्याम पै,—
 कौंध उठती है जहाँ, हाय ! वहीं अपना
 एक अग रोकें और होके अनुत्तीर्ण भी
 पारसी ! तुम्हारी उस प्रथम परीक्षा मे
 पड़ता है पतित तुम्हारे पद में पुन
 इसका निसर्गस्थान प्राणनाथ था जहाँ
 उठके जहाँ से इम घूलिकण ने प्रभो !
 होड की थी हाटरु की, हों हों उस हेम की,—
 कौन कसे जाने की कहे जो ताप ताडना—
 छेदनादि को भी खेल मे ही भेल लेता है,—
 पाया उसका जो स्वाद याद सदा रक्तेगा ।
 किन्तु अब है हुध्रा पदस्थ, अब तो इसे
 कामद पदारविन्द का पराग होने दो
 मधुर मरन्द से उसी के सन्तानन्द हो ॥



जयशङ्कर 'प्रसाद'

भारत-महिमा

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार ।
 उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक-हार ॥
 जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक ।
 व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नष्ट, अखिल ससृति हो उठी अशोक ॥
 विमल चाणी ने वीणा ली कमल-कोमल-कर में सप्रीत ।
 सप्तस्वर सप्तसिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-सङ्गीत ॥
 वचाकर धीज-रूप से सृष्टि, नाव पर भेल प्रलय का शीत ।
 अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत ॥
 सुना है दधीचि का वह त्याग—हमारी जातीयता-विकास ।
 पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थि-शुग का मेरे इतिहास ॥
 सिन्धु-सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह ।
 दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह ॥
 धर्म का ले-लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बन्द ।
 हमी ने दिया शान्ति-सन्देश, सुखो होते देकर आनन्द ॥
 विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम ।
 मिथु होकर रहते सम्राट्, दया दिखलाते घर-घर धूम ॥
 यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि ।
 मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि ॥

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं ।
 हमारी जन्म-भूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं ॥
 जातियों का उत्थान पतन, आँधियों, भङ्गी, प्रचंड समीर ।
 खड़े देखा, भेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर ॥
 चरित थे पूत, मुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न ।
 हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न ॥
 हमारे सन्धय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव ।
 वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी देव ॥
 वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान ।
 वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य-सन्तान ॥
 जियें तो सदा उसी के लिये, यही अभिमान रहे, यह हर्ष ।
 निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतपर्य ॥



परिशिष्ट

कवि-परिचय

कबीर—

कबीर साहब का जन्म काशी के पास विक्रम संवत् १४५६ में हुआ था। ये जाति के जुगहे थे। इनके पिता का नाम नीरू और माता का नामा बतलाया जाता है। काशी में साधु-सन्तों के समागम से कबीर साहब के हृदय में वैराग्य के भाव जमने लगे। इन्होंने स्वामी रामानन्दजी को अपना गुरु बनाया। उस समय स्वामी रामानन्द का प्रभाव खूब घट रहा था और छोटे-बड़े, ऊँच नीच सब उनके उपदेशामृत से तृप्त हो रहे थे। कबीर ने अपने नाम से कबीर-पथ चलाया, जिसमें सूफी-धर्म और वेदान्त के आधार पर सब धर्मों की एकता सिद्ध की गई। इनके शिक्षा वचनों का संग्रह 'बीजक' ग्रन्थ में हुआ है, जिसके मुख्य भाग हैं—'सारी, सबद और रमैणी। हिन्दू मुसलमान दोनों ने इनके भावपूर्ण उपदेशों से शिक्षा ग्रहण की। शिक्षित न होने पर भी ये अपने सिद्धान्त के बहुत पक्के थे और हिन्दू मुसलमानों को उनकी कुरीतियों के लिए फटकारते थे। यद्यपि इनकी कविता में कहीं कहीं ऊटपटांग भाषा है, किन्तु भाव बहुत स्पष्ट हैं और धर्म के गूढ़ तत्त्व बड़े सरल ढंग से समझाये गये हैं। कबीर निर्गुण धारा की जानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं। इनका मृत्युकाल विक्रम संवत् १५७५ माना जाता है।

मलिक मुहम्मद जायसी—

मलिक मुहम्मद प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहिउद्दीन के शिष्य थे। अवध प्रान्त के जायस गाँव के निवासी होने से ये जायसी कहलाए। इनके जन्म मरण का ठीक समय निश्चित नहीं है। ये प्रेममार्गी सूफी शाखा के मुख्य कवि हैं। इन्होंने शेरशाह सूरी के राज्य-समय वि० सं० १५९७ में अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' लिखा। 'पद्मावत' में चित्तोड के राजा

रतनसेन और सिंहल की राजकुमारी पद्मावती के विवाह तथा पद्मावती के लिये सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड़ की चढ़ाई आदि का वर्णन है। ठेठ अग्रणी भाषा में दोहा चौपाइयों में रचे हुए इस प्रबन्ध-काव्य में सांसारिक प्रेम के दृष्टान्तों से परमात्मा के प्रेम का दिग्दर्शन हुआ है। 'पद्मावत' की कविता स्वाभाविकता और गम्भीर भावों से व्याप्त है। सुभसिद्ध साहित्यालोचक प्रो० रामचन्द्रजी शुक्ल के मतानुसार जायसी ने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं ही की बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिणी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखाया। 'पद्मावत' के सिवा जायसी ने 'अमरावत' नाम का एक वेन्दान्त विषयक ग्रन्थ भी लिखा। निरसन्देह हिन्दी साहित्य में जायसी का एक विशेष स्थान है। 'गोरा की घीर गति' जायसी के 'पद्मावत' का एक अंश है।

महात्मा सूरदास—

इसका जन्म विक्रम संवत् १५४० के लगभग भागरा और मथुरा के मार्ग में रुनकता गाँव के एक सारस्वत ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इसके छ भाई मुसलमानों के साथ युद्ध में मारे गये। केवल यही शेष रह गये। नेत्रहीन होने के कारण ये युद्ध में नहा जा सकते थे, इसलिए ये इधर उधर घूमते रहे। एक बार भाप कुँ में गिर पड़े और यहीं छ दिन तक पड़े रहे। अन्त में दीनदयालु भगवान् ने कृपा रूप में प्रकट होकर, इन्हें दृष्टि प्रदान कर अपने रूप का दर्शन कराया और कुँ से बाहर निकाला। सूरदासजी ने घर मँगा कि जिन नरों से मैंने भगवान् का रूप देखा, उनसे और कोई वस्तु न देखूँ और हृदय में सदा भाग्य पान बना रहे। इसी से सूरदासजी फिर प्रपादशु हो गये और अपने प्रभु की लीलाभूमि व्रज में निवास करने लगे। मूर उष काटि के भक्त कवि हैं। एसी प्रसिद्धि है कि आपने सवा लाख पदों की रचना की थी, पर अब तक लगभग ५६ हजार पद मिले हैं, जिनका समूह 'सूरसागर' में हुआ है। श्रीवल्लभाचार्यजी के पुत्र गोसाईं विद्वन्नाथजी ने सूरदासजी

को आठ श्रेष्ठ कृष्णभक्त कवियों में, जो अष्टछाप में गिने जाते हैं, सर्वप्रथम स्थान दिया है। सूरदासजी की कविता का मुख्य विषय है श्रीकृष्णलीला, जिसमें बाललीला, राधाकृष्ण प्रेम और गोपी विरह आदि का सविस्तर एवं सुन्दर वर्णन है। आपकी कविता स्वाभाविकता और सरसता से ओतप्रोत है। जिस तरह कबीर के काव्य में ज्ञान की प्रधानता है, उसी तरह सूरदास में भक्ति की पराकाष्ठा देख पड़ती है। सूरदासजी ब्रजभाषा के तथा वास्तव्य और वियोग शृङ्गार रसों के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, इसी से 'सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास' यह लोकोक्ति अद्य तक प्रचलित है। इनका स्वर्गवास वि० स० १६२० में हुआ। 'विनय वाणी' आदि सब पद 'सूरसागर' में लिये गये हैं।

अष्टछाप के कवि—

वि० स० १५८७ में वैष्णव धर्म के विख्यात प्रवर्तक और शुद्धाद्वैतवाद के संस्थापक श्रीवल्लभाचार्यजी का गोलोकवास होने के पश्चात् उनके पुत्र गोसाईं विठ्ठलनाथजी ने अपने समय तक के, सुन्दर सुन्दर पदों की रचना करनेवाले, पुष्टिमार्ग के अनेक उत्कृष्ट कवियों में से आठ सर्वोत्तम कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास अष्टछाप के कवि हैं। इनकी रचनाएँ 'मिश्रबन्धुविनोद' से ली गई हैं।

परमानन्ददास—ये वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। वि० स० १६०६ क भासपास कन्नौज में रहने से ये कान्यकुब्ज माने जाते हैं। इन्होंने समयतापूर्वक सरस काव्य रचना की है। जनश्रुति के अनुसार एक बार इनके किसी पद को सुनकर वल्लभाचार्यजी कई दिनों तक अपने तन की सुध भूले रहे। हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज में इनके पदों का एक संग्रह तथा 'ध्रुवचरित्र' और 'दानलीला' नामक ग्रन्थ मिले हैं।

कुम्भनदास—ये परमानन्ददास के समसामयिक थे और धन, मान आदि की छालसा से कोसों दूर रहकर विरक्त जीवन निताते थे। एक बार

भक्तियर यदशाह ने इन्हें फतहपुर सीकरी बुलाकर इनका वधेष्ट सम्मान किया, पर इन्हें उसका खेद ही बना रहा, जैसा कि इस पद से जान पड़ता है—

सतन का सिक्री सन काम ?

भावत जात पनहियौं टूटा, विसरि गयो हरि नाम ।

कुम्भनदास लाल गिरिधर बिन और सब बेकाम ॥

इनका कोई ग्रन्थ भय तक नहीं मिला, परन्तु इनके रचे हुए भगवान् कृष्ण की बाललीला और प्रेमलीला-सम्बन्धी पुटकर पद्य पाये जाते हैं ।

चतुर्भुजदास—चतुर्भुजदास कुम्भनदासजी के पुत्र और गोसाईं विठ्ठलनाथजी के शिष्य थे । इनके तीन ग्रन्थ—‘भक्ति-प्रताप’, ‘हितजू को मंगल’ और ‘द्वादशयज्ञ’—मिले हैं, जिनकी भाषा चलती और व्यवस्थित है । इनके स्फुट पद्य भी यत्र तत्र पाये जाते हैं ।

नन्ददास—ये प्रायः सूरदासजी के समकालीन थे । इनका काव्यकाल सूरदासजी की मृत्यु के पीछे अथवा उसके कुछ आगे तक माना जाता है । अष्टछाप में सूरदासजी के पश्चात् इन्हीं का नाम उल्लेखनीय है । इन्होंने बहुत सरस एवं मधुर पद्य रचना की है । इसके लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है कि ‘और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया ।’ इनका अतिप्रसिद्ध ग्रन्थ ‘रासपञ्चाध्यायी’ है, जिसमें अनुभासादि युक्त साहित्यिक भाषा में श्रीकृष्ण की रासलीला का सविस्तर वर्णन है । इन्होंने कोई १४ पुस्तकें लिखीं, किन्तु ‘रासपञ्चाध्यायी’ के सिवा केवल तीन—‘भ्रमरगीत’, ‘अनेकार्थमञ्जरी’ और ‘अनेकार्थनाममाला’—प्रकाश में आई हैं, जिनमें ‘भ्रमरगीत’ की विशेष प्रसिद्धि है ।

गोविन्दध्वामी—य अन्तरी निवामी सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की तरह आकर महावन में रहने लगे । फिर गोसाईं विठ्ठलनाथजी के शिष्य हुए । इनके सुन्दर पदों से प्रसन्न होकर गोसाईंजी ने इन्हें अष्टछाप में स्थान दिया । ये गोवर्धन पर्वत पर निवास करते थे । उसके समीप इनका छगाया हुआ कदम्बों का सुन्दर उपवन भय भी ‘गोविन्दध्वामी’ की

कदम्बखर्बी' कहलाता है। कवि होने के सिवा ये पक्षके गर्वये भी थे, तानसेन तक इनका गाना सुनने के लिये आया करते थे। इनका कविता काल वि० स० १६०० और १६२५ के बीच है।

गोस्वामी तुलसीदास—

गोस्वामीजी का जन्म वि० स० १५५४ में बौदा जिले के रागापुर गाँव में सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। कोई इसका जन्म सन् १५८३ मानते हैं। इनका पहला नाम रामयोला और इनके माता पिता का नाम क्रमशः हुलसी और आत्माराम था। जन्म के पश्चात् ही इनकी माता का देहान्त हो गया और पिता ने इन्हें छोड़ दिया। कुछ समय तक एक दासी ने इन्हें पाला, फिर नरहरिदास (अथवा नरहर्यानन्द) नामक महात्मा ने इन्हें अपने यहाँ रखकर इनके सब संस्कार किए और इनका नाम तुलसीदास रखा। इनसे गोस्वामीजी ने कई बार रामायण की कथा सुनी। फिर काशी में शेष सनातन नामक विद्वान् से इन्होंने विद्याभ्ययन किया। तत्पश्चात् इनका विवाह हुआ। कहते हैं कि गोस्वामीजी अपनी स्त्री में अत्यन्त अनुरक्त थे, अतः इनकी अनुपस्थिति में एक बार उसके मायके चले जाने पर आप भी उसके पीछे पीछे अपनी ससुराल को दौड़े गए। इसपर इनकी स्त्री ने इन्हें बहुत फटकारकर कहा कि मुझमें आपकी जिसनी प्रीति है उतनी भगवान् श्रीराम में होती, तो आप भवयन्धन से मुक्त हो जाते। यह बात गोसाईंजी को सुभ गई और ये काशी आकर विरक्त हो गए। फिर लगभग तीस वर्ष तक इन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया, और चित्रकूट, अयोध्या, काशी आदि में रहते हुए वि० स० १६८० में काशी पुरी में इनका स्वर्गवास हुआ।

गोस्वामीजी हिन्दी के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं। यद्युक्त तुलसीदासजी के नाम से अपरिचित होना हिन्दी साहित्य से अनभिज्ञ रहने के समान है। जिस प्रकार सुरदासजी कृष्ण के परम भक्त थे, उसी तरह गोस्वामीजी राम के अनन्य उपासक थे। गोस्वामीजी का 'रामचरितमानस'

अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। श्रीमद्भगवद्गीता के सिवा सारे भारतीय साहित्य में समस्त ऐसा कोष्ठ ग्रन्थ नहीं है जिसका रामचरितमानस की तरह प्रचार हुआ हो। पढ़े लिखे या अपढ़, सभी को हिन्दू जाति के इस आदर्श ग्रन्थ की ओर धीरे-धीरे कण्ठ रहती है और कहावतों तथा धर्मवाक्यों की तरह उनका प्रयोग होता है। 'रामचरितमानस' में गोस्वामीजी ने सरल और मधुर अवधी भाषा की उत्कृष्ट कविता में श्रीराम का आदर्श चरित्र अद्विष्ट करके जातीय जीवन में नवजीवन का संचार किया और मानव जीवन के उच्च आदर्शों की स्थापना की। मनुष्य-जीवन की ऐसी कोष्ठ परिस्थिति नहीं है, जिसका चित्रण इस ग्रन्थ रत्न में न हुआ हो। गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों में 'धिनयपत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली', 'कृष्णगीतावली', 'दोहावली', 'घरने रामायण' और 'तुलसी सतसई' मुख्य हैं। तुलसीदासजी की कविता ब्रजभाषा और अवधी दोनों में हुई है और इनकी भाषा सरल, सुन्दर तथा व्यवस्थित है।

मीरोंवाड़—

मीरोंवाड़ जोधपुर राज्य के संस्थापक राठोड़ जोधाजी की प्रपौत्री और मेवाड़ के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की धर्मपत्नी थीं। मेढता जागीर (जोधपुर राज्य) के चोक्डी गाँव में वि० स० १५५९ के आसपास इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही मीरोंवाड़ में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति थी। युवावस्था में ही विधवा हो जाने पर वे अपना सारा समय साधु-भक्तियों के संसर्ग और श्रीकृष्णभक्ति में, जो इनके पितृकुल में पौढ़िया छे चली आती थी, बितान लगीं। मारों की इस प्रवृत्ति से उनके देवर और ताकालीन महाराणा विक्रमादित्य भद्रसल होकर उन्हें कई प्रकार से सत्ताने लग्य। विधवान कराये जाने पर भी मीरों का बाल तक योका न हुआ। फिर सीययात्रा के लिये मेवाड़ छोड़कर इन्होंने म्यायी रूप से द्वारकापुरी में निवास किया, जहाँ वि० स० १६०३ के लगभग इनका मृत्यु-काल माना जाता है। मीरोंवाड़ की

कदम्बखडी' कहलाता है। कवि होने के सिवा ये पक्के गवैये भी थे, तानसेन तक इनका गाना सुनने के लिये भाया करते थे। इनका कविता काल वि० स० १६०० और १६२५ के बीच है।

गोस्वामी तुलसीदास—

गोस्वामीजी का जन्म वि० स० १५५४ में घाँदा जिले के राजापुर गाँव में सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। कोई इनका जन्म-संवत् १५८३ मानते हैं। इनका पहला नाम रामबोला और इनके माता पिता का नाम क्रमशः हुलसी और आत्माराम था। जन्म के पश्चात् ही इनकी माता का देहान्त हो गया और पिता ने इन्हें छोड़ दिया। कुछ समय तक एक दासी ने इन्हें पाला, फिर नरहरिदास (अथवा नरहर्यानन्द) नामक महात्मा ने इन्हें अपने यहाँ रखकर इनके सत्र सस्कार किए और इनका नाम तुलसीदास रखा। इनसे गोस्वामीजी ने कई बार रामायण की कथा सुनी। फिर काशी में शेष सनातन नामक विद्वान् से इन्होंने विद्याध्ययन किया। तत्पश्चात् इनका विवाह हुआ। कहते हैं कि गोस्वामीजी अपनी स्त्री में अत्यन्त अनुरक्त थे, अतः इनकी अनुपस्थिति में एक धार उसके मायके चले जाने पर आप भी उसके पीछे पीछे अपनी ससुराल को दौड़े गए। इसपर इनकी स्त्री ने इन्हें बहुत फटकारकर कहा कि मुझमें आपकी जितनी प्रीति है उतनी भगवान् श्रीराम में होती, तो आप भवबन्धन से मुक्त हो जाते। यह बात गोसाईंजी को चुभ गई और ये काशी भाकर विरक्त हो गए। फिर लगभग बीस वर्ष तक इन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया, और चित्रकूट, अयोध्या, काशी आदि में रहते हुए वि० स० १६८० में काशी पुरी में इनका स्वर्गवास हुआ।

गोस्वामीजी हिन्दी के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं। वस्तुतः तुलसीदासजी के नाम से अपरिचित होना हिन्दी साहित्य से अनभिज्ञ रहने के समान है। जिस प्रकार सूरदासजी कृष्ण के परम भक्त थे, उसी तरह गोस्वामीजी राम के अनन्य उपासक थे। गोस्वामीजी का 'रामचरितमानस'

तन्मयता का अभाव है, तो भी शास्त्रीय पद्धति पर साहित्य मीमांसा का मार्ग प्रशस्त करने के लिए हिन्दी साहित्य पर इनका ऋण बना रहेगा। इनका मृत्यु-काल वि० स० १६७४ के आसपास है।

रसखान—

इनका जन्म विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दिल्ली के एक पठान सरदार के घराने में हुआ था। ये बड़े कृष्ण भक्त और गोसाईं विठ्ठलनाथजी के कृपापात्र शिष्य थे। कहते हैं, कि जिस स्त्री पर ये आसक्त थे, वह इनका अनादर किया करती थी। एक दिन श्रीमद्भागवत के फारसी अनुवाद में कृष्ण के प्रति गोपियों की अनन्य भक्ति और अलौकिक प्रेम का वर्णन पढ़कर इन्हें खयाल हुआ कि जिसपर इतनी गोपियों अपने प्राण न्योछावर करती हैं, उसी घृन्दावन विहारी से क्यों न मन लगाया जाय। इसी बात पर रसखान घृन्दावन चले गये। इन्होंने अपने पद्यों में ऐसे सुन्दर उद्गार प्रकट किये कि सर्वसाधारण में प्रेम या शूद्रार-सम्बन्धी कवित्त सर्वियों की 'रसखान' संज्ञा प्रचलित हो गई, जैसे 'कोई रसखान सुनाओ'। इनकी भाषा सरस, खलती और शब्दाढम्बर-शून्य होती है। अत्र तक इनकी दो छोटी छोटी पुस्तकें—'प्रेमवाटिका' (दोहे, रचना-काल वि० स० १६७१) और 'सुज्ञान रसखान' (कवित्त-सर्विया)—प्रसिद्धि में आई हैं। इनकी पद्य रचना का परिमाण अधिक न होने पर भी वह अनुप्रास तथा भावों की सुन्दर छटा के साथ प्रेमियों के लिये मर्मस्पर्शिनो है। इस पुस्तक के पद्य 'रसखान और घनानन्द' से लिए गए हैं। चम्पुतः रसखान की कविता 'यथा नाम तथा गुण' का चरितार्थ करती है।

विहारीलाल—

विहारीलाल चौध ब्राह्मण थे। इनका जन्म ग्वालियर के पास चमुवा गोविन्दपुर गाँव में वि० स० १६६० के लगभग माना जाता है। इन्होंने बाल्यावस्था में देहली में पिताई और जयपुर अपनी समुदाय मथुरा में। ये जयपुर के मिर्जा राना जयसिंह के दरबार में गये पद्यों

गणना उच्च कौटिक के भक्त कवियों (सगुण धारा, कृष्ण शारदा) में होती है और हिन्दी स्त्री-कवियों में इनका सर्वोच्च स्थान है। मीरोंवाह के पदों (भावपूर्ण भजनों) का, जिनमें हृदय की मर्मस्पर्शिनी वेदना और भक्त की प्रेममय तल्लीनता की स्रोतस्विनी बहती है, राजस्थान, गुजरात आदि प्रान्तों में बहुत प्रचार है। मीरों की कविता की भाषा राजस्थानी और सुगम वज्रभाषा या इनका मिश्रण है।

केशवदास—

इनका जन्म वि० स० १६१२ में ओडिशा के एक सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके घराने में बराबर संस्कृत के अच्छे पण्डित होते आये थे। ये अपने समय में प्रधान साहित्य शास्त्र कवि माने जाते थे। इनके समय से कुछ पूर्व ही रस, अलङ्कार आदि काव्याङ्गों के निरूपण की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट हो चुका था। संस्कृत के ज्ञान होने से इन्होंने भी अलङ्कार और रस शास्त्र पर क्रमशः 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ लिखे। इनके प्रबन्ध-काव्य 'रामचन्द्रिका' की भी, जिसका एक अंश इस सङ्कलन में उद्धृत है, पर्याप्त प्रसिद्धि है। इसमें अलङ्कारों की बहुत भरमार है और सम्बन्ध निर्वाह जैसा चाहिए वैसा नहीं हो सका। जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ "केवल चमत्कार और शब्द-कौशल दिखाने के लिए रचा गया है, न कि हृदय की सच्ची प्रेरणा से।" उपर्युक्त तीन ग्रन्थों के सिवा इन्होंने चार और पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'विज्ञान-गीता' मुख्य है। केशवदास की कविता के सम्बन्ध में यह कहावत प्रचलित है कि "कवि को दीन न चहै विदाई। पूछै केशव की कविताई।" केशव बड़े रसिक जीव थे। अपनी वृद्धावस्था में एक बार जब ये कुर्छ पर बैठे हुए थे, स्त्रियों ने इनका 'बाबा' शब्द से सम्बोधन किया, इसपर इन्होंने पश्चात्तापपूर्वक यह दोहा कहा था—'केशव केशनि अस करी बैरिहु जस न करहिं। चन्द्रवदनि मृगलोचनी यात्रा कहि कहि जाहि ॥' यद्यपि केशवदास की वाणी में सूरदास और तुलसीदास की सरसता एवं

किन्तु हिन्दू जाति के इस प्रतिनिधि कवि ने अपनी कविता में अपने हृदय के सच्चे उद्गारों को प्रकट किया है। मूषण की यह विशेषता है कि इन्होंने अपनी लेखनी से मधुर और सुकोमल ब्रजभाषा में भी वीर रस का अविरल स्रोत बहाया है। 'शिवराजभूषण', 'शिवावावनी' और 'छत्रसाल-दशक' इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनका मृत्युकाल सन् १७७२ माना जाता है।

रुविराजा बाँकीदास—

इनका जन्म वि० स० १८१८ में जोधपुर राज्य के पचपहरा परगने के भौडियावास गाँव में आशिया चारणकुल में हुआ था। बचपन में इन्होंने अपने पिता से मरुभाषा के गीत, कवित्त, दोहे आदि सीखकर काव्य रचना का श्रोगणन किया था। सोलह वर्ष की आयु तक घर पर शिक्षा पाकर ये जोधपुर चले गये, जहाँ पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न गुणों से सस्कृत साहित्य, व्याकरण आदि विविध विषयों का अध्ययन करा रहे। जोधपुर के विद्या रसिक नरेश मानसिंहजी ने अपने गुरु से बाँकीदासजी की कविरस्य शक्ति की प्रशंसा सुनकर इन्हें अपने दरबार में बुलाया। इनकी काव्य रचना से अत्यन्त प्रसन्न होकर उक्त नरेश ने इन्हें लाख पसाव (लक्षदान) तथा टसकी पूर्ति में दो गाँव दिये और इनमें भाषा-साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन किया। स्वतन्त्र प्रकृति के होने से बाँकीदास पद्य स्पष्ट वक्ता और निर्भीक कवि थे। पद्यदिग्गज, मरुभाषा पद्य सस्कृत के आशुकवि और उत्कृष्ट विद्वान् थे। इनकी दिग्गज-पद्य-रचना सम-वारण तथा प्रसाद-गुण सम्पन्न है और वीर रस की कविता अनुपम और आनन्विनी है। इन्होंने विशेषतः दिग्गज भाषा में छोटी-छोटी २५ पुस्तकें लिखी, जिनमें 'सूर छतीसी', 'सोह छतीसी', 'वीरविनाद', 'धवल-पद्मी', 'दातार-बायनी', 'नीति मञ्जरी', (प्रस्तुत कविता इसमें उद्धृत है) 'भाषदिया मित्राङ्ग', 'मोह मर्दन', 'सुगल मुग्ध-चपलिका', 'सुखवि पत्तासी', 'सिद्ध-वर्गीसी', 'भुर जाल भूषण' तथा 'गङ्गाहरी' आदि १७ पुस्तकों का कविता-संग्रह-प्रकाशित किया है।

इन्ह एक-एक दोहे पर एक-एक अक्षरफो का मिलना ही इनके यथेष्ट सम्मान का परिचायक है। महाराज जयसिंह की इच्छा के अनुसार ये दोहे बनाते रहे। शनै शनै दोहों की सख्या बढने पर इनका अपूर्व ग्रन्थ 'सतसई,' जिसमें लगभग ७०० दोहों का समग्र है, तैयार हुआ। इस समग्र के दोहे 'सतसई' से उद्धृत ह। इस ग्रन्थ का जनता में इतना प्रचार हुआ कि इसपर दर्जनों टीकाएँ हो चुकी और अब तक नई नई होती जा रही हैं। इस मुक्तक काव्य में विविध विषयों के परस्पर असम्बद्ध फुटकर दोहों का समग्र है। सतसई के दोहों में शृङ्गार रस की प्रधानता है। सुकवि विहारीलाल की यह विशेषता है कि इन छोटे छोटे दोहों में भी इन्होंने बहुत गभीर भाव भर दिये हैं। ग्रन्थ की रचना सादी और स्वाभाविक प्रजभाषा में हुई है। वि० स० १७२० के आसपास इनका स्वर्गवास माना जाता है।

भूषण—

वि० स० १६७० म कानपुर जिले के तिकवाँपुर गाँव म भूषण का जन्म हुआ था। ये सुप्रसिद्ध कवि मतिराम और चिन्तामणि के भाई तथा वीर रस के विख्यात कवि हुए हैं। इनके असली नाम का पता नहीं चलता। चित्रकूट के राजा रदराम सोलकी से इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि मिली थी, तभी से ये 'भूषण' नाम से ही प्रसिद्ध हुए। पन्नामरेश महाराज छत्रसाल ने इनका बड़ा सम्मान किया था। ये वीरकेसरी छत्रपति शिवाजी के दरबार में भी रहे थे। भूषण की रग रग में हिन्दू जाति का अभिमान भरा हुआ था, इसलिए उसका अध पतन इनके लिए असह्य था। इसी से इन्होंने अन्याय दमन में तत्पर और हिन्दू धर्म के सचे सरक्षक दो इतिहास प्रसिद्ध वीर नरेशों—छत्रसाल और शिवाजी—की कृति को ही अपनी ओजस्विनी और वीरदर्पपूर्ण काव्य-रचना का विषय बनाया। भूषण की रचनाओं के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि झूठी खुशामद के लिए इन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा नहीं लिपी,

किन्तु हिन्दू जाति के इस प्रतिनिधि कवि ने अपनी कविता में अपने हृदय के सच्चे उद्गारों को प्रकट किया है। भूषण की यह विशेषता है कि इन्होंने अपनी लेखनी से मधुर और सुकोमल व्रजभाषा में भी वीर रस का अविरल स्रोत बहाया है। 'शिवराजभूषण', 'शिवादावनी' और 'छत्रसाल-दशक' इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनका मृत्युकाल सवत् १७७२ माना जाता है।

कविराजा बाँकीदास—

इनका जन्म वि० स० १८३८ में जोधपुर राज्य के पचपदरा परगने के भौडियावास गाँव में भाद्रिया चारणकुल में हुआ था। बचपन में इन्होंने अपने पिता से मद्रभाषा के गीत, कवित्त, दोहे आदि सीखकर काव्य रचना का श्रीगणेश किया था। सोलह वर्ष की आयु तक घर पर शिक्षा पाकर ये जोधपुर चले गये, जहाँ पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न गुरुओं से संस्कृत साहित्य, व्याकरण आदि विविध विषयों का अध्ययन करते रहे। जोधपुर के विद्या रसिक नरेश मानसिंहजी ने अपने गुरु से बाँकीदासजी की कवित्व शक्ति की प्रशंसा सुनकर इन्हें अपने दरबार में बुलाया। इनकी काव्य रचना से अत्यन्त प्रसन्न होकर उक्त नरेश ने इन्हें लाल पसाव (लक्षदान) तथा उसकी पूर्ति में दो गाँव दिये और इनसे भाषा सहाय के ग्रन्थों का अध्ययन किया। स्वतन्त्र प्रकृति के होने से बाँकीदास एक स्पष्ट वक्ता और निर्भीक कवि थे। ये डिगल, व्रजभाषा एवं संस्कृत के आशुकरि और उत्कृष्ट विद्वान् थे। इनकी डिगल-वद्य-रचना चमत्कारपूर्ण तथा प्रसाद-गुण सम्पन्न है और वीर रस की कविता अनुपम और भोज्यमिनी है। इन्होंने विशेषतः डिगल भाषा में छोटी-छोटी २४ पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'मूर छतामी', 'सोह छतीसी', 'वीरविनोद', 'धवळ-पचीसी', 'दातार यावनी', 'नीति मजरी', (प्रस्तुत कविता इसमें उद्धृत है) 'भावदिया मिनाज', 'मोह मर्दन', 'सुगल मुव चपेटिका', 'कुडवि बर्त्तीसी', 'विदुर पत्तीमी', 'भुर जाल भूषण' तथा 'गद्दालहरी' आदि १० पुस्तकों को काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने 'बाँकीदास-ग्रन्थावली' शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित किया है।

बाँकीदास कवि ही नहीं, किन्तु इतिहासप्रेमी भी थे। इन्होंने बहुतसी ऐतिहासिक बातों का सुन्दर एवं वृहत् समग्र किया था, जो अब तक अप्रकाशित है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र—

[आपका परिचय गद्य रत्न माला, पृ० ४८४-८५ में छपा है।]

आपकी भाषा ललित, भोजम्विनी और चुभती हुई है। कई एक सभाओं और क्लबों की स्थापना के अतिरिक्त आपने 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'हरिश्चन्द्र-भोगजीन' नामक पत्र पत्रिकाएँ निकालीं। भारतेन्दुजी ने कविता प्रवाह को बटल दिया, जिससे पुराने ढंग की कविता के स्थान में नई, भावपूर्ण और सामयिक पद्य रचना होने लगी। इनकी कविता ब्रजभाषा और खड़ी बोली में हुई है। शुद्ध हिन्दी के पक्ष पाती होने से इन्हें उर्दू मिश्रित भाषा पसन्द नहीं थी। इनके लगभग २७ काव्यों में 'प्रेममाधुरी' तथा 'प्रेमफुलवारी' मुख्य हैं। 'गङ्गा-गरिमा' और 'पावस-भसान' 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक के, 'नारद की वीणा', 'वह छत्रि' एवं 'यमुना-वर्णन' 'श्रीचन्द्रावली' नाटिका के और 'प्रेम-महिमा' 'नील देवी' नामक ऐतिहासिक गीतिरूपक के उद्धरण हैं।

श्रीधर पाठक—

वि० स० १९१६ में पाठकजी का जन्म भागरा जिले में जोधरी गाँव के सारस्वत ब्राह्मण कुल में हुआ था। इन्होंने घर पर संस्कृत पढ़ी। स्कूल से मॅट्रिक्स परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् इन्होंने सरकारी नौकरी कर ली। अपने कार्य में बड़ी तत्परता दिखाने से सरकार में इनकी बहुत प्रशंसा हुई। शनैः शनैः उन्नति करते हुए ये सयुक्त प्रान्तीय सरकार के दफ्तर के सुपरिन्टेंडेंट बनाए गए। फिर पेंशन लेकर आप प्रयाग में रहने लगे। पाठकजी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अपनी कविता परन्तु इनकी ब्रजभाषा की काव्य रचना अधिक सरस और खड़ी बोली के प्रारम्भिक कवियों में थे। इनकी

काव्योपयोगी शब्दों का बहुत ध्यान रखा गया है। वस्तुतः पाठकजी 'सुधराई' की मूर्ति और प्राकृतिक मन्दिर के बड़े उपासक थे। 'काश्मीर सुखमा' (इससे 'काश्मीरसुखमा' उद्धृत है), 'देहरादून', आदि रचनाओं में इनका प्रकृति प्रेम खूब झलकता है। इनके 'ऊजड़ आम', 'श्रान्त पथिक' और 'एकान्तवासी योगी' शीर्षक अँगरेजी-कवि गोडस्मिथ के काव्यों के हिन्दी अनुवाद भी स्वतंत्र रचनाओं जैसे सरस और सुन्दर हुए हैं। 'भारतगीत' में इन्हीं भारत विषयक कविताओं का संग्रह है। 'मनो विनोद' (इससे 'कायर', 'हिमालय' और 'वृन्दावन' उद्धृत हैं) में इनकी स्फुट कविताओं का सुन्दर सकलन हुआ है। 'वन शोभा' पद्य 'कविता कौमुदी' (भाग २) से लिया गया है। अँगरेजी और संस्कृत दोनों के काव्य-साहित्य से खूब परिचित होने से पाठकजी की रचि अत्यन्त परिष्कृत थी। इनके पद्यों में चलती और रसीली भाषा के साथ कोमल पद्य मधुर संस्कृत-पद्य विल्यास देखा पड़ता है। वस्तुतः पाठकजी अत्यन्त भावुक, सुरचिसम्पन्न एवं प्रतिभाशाली कवि थे। कुछ वर्ष पूर्व इनका स्वर्गवास हुआ।

नाथूराम शंकर शर्मा—

शंकरजी का जन्म वि० सं० १९१६ में अलीगढ़ जिले के हरदुभागज कस्बे में हुआ था। तेरह वर्ष की आयु में आपने काव्य रचना का आरम्भ किया था। आपका हिन्दी के पुराने कवियों में स्थान है। पहले शंकरजी मजभाषा में बड़ी सुन्दर और गठी हुई काव्य रचना करते थे। इस पुस्तक में चुनी हुई 'स्फुट पद्य'-शीर्षक रचना इनकी वियोग सम्बन्धी कविता का एक नमूना है। पीछे से आप खड़ी बोली में भी खूब लिखने लगे। आर्य समाज में अन्धविश्वास और सामाजिक कुतर्तियों के उग्र विरोध की प्रवृत्ति बहुत समय तक जारी रही। आर्यसमाज से शर्माजी का सम्बन्ध रहने के कारण इनकी रचनाओं में भी उसी अतर्तृप्ति का आभास देखा पड़ता है। फतियाँ और फटकार इनके पद्यों की एक विशेषता है। वर्णवृत्त की भाँति मात्रिक और मुक्तक छंदों में भी पद्यों की समाप्त सख्या

रखकर आपने काव्य-सम्यन्धी एक कड़े नियम को निवाहा है। इनकी कविता में अनुप्रास, भाव-भाग्भीर्य और शब्द लालित्य रूप मिलता है। 'शकरसरोज', 'अनुरागरत्न' और 'घायसविजय' आपके मुख्य ग्रन्थ हैं। कुछ वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हुआ है। आपके पद्य क्रमशः 'सुधा' और कविता कौमुदी (भाग २) से उद्धृत हैं।

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—

बाबू जगन्नाथदासजी का जन्म वि० स० १९२३ में काशी के एक प्रतिष्ठित अग्रवाल-परिवार में हुआ था। इनके पिता बाबू पुरुषोत्तदास भारते-दुर्जी के मित्र थे। उनके सत्संग से रत्नाकरजी में भी काव्य की ओर अनुराग उत्पन्न हुआ और छोटी उम्र में ही ये कविता लिखने लगे। इनके पूर्वज गद्दशाही सेवा में उच्च पदों पर रहे थे, जिससे इनके घराने में फारसी का भान होता रहा। आपने भी बी० ए० परीक्षा के लिए फारसी पढी थी और पहले उसी में कविता करते थे, - परन्तु शनैः शनैः आप में हिन्दी प्रेम जागृत हुआ और हिन्दी में आपकी कविरव शक्ति का विकास होने लगा। रत्नाकरजी प्राचीन साहित्य के अपूर्व मर्मज्ञ थे। इन्होंने अनेक प्राचीन काव्यों का सुसम्पादन कर उन्हें छपवाया और विहारी की 'सतसई' पर 'त्रिहारी रत्नाकर' नाम की उत्कृष्ट टीका लिखी। अपने अन्तिम काल में आप 'सूरसागर' का सम्पादन कर रहे थे। रत्नाकरजी आधुनिक युग के ध्रजभापा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। प्राचीन पद्धति पर लिखी हुई इनकी सुस्त और ओजस्विनी कविता को पढकर देव या पद्माकर का स्मरण होता है। 'हिटोला', 'हरिश्चन्द्र', 'गगावतरण', 'बद्धव शतरु', 'कलकाशी' तथा 'शृंगारलहरी' आपकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'गगावतरण' पर इन्हें हिन्दुस्तानी एकेडेमी से ५००) २० का पुरस्कार मिला था। ई० स० १९३२ में इनका स्वर्गवास होने के पश्चात् काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने इनकी समस्त काव्य रचनाओं का 'रत्नाकर' शीर्षक अत्यन्त सुन्दर समग्र प्रकाशित किया। रत्नाकरजी अयोध्या नरेश

के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् आप महारानी साहिबा के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे थे। इस पुस्तक की कविता 'रसाकर' से उद्धृत है।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिभोध'—

उपाध्यायजी का जन्म वि० स० १९२२ में युक्त प्रान्त के आजम गढ जिले के निजामाबाद कस्बे में साठवें प्राज्ञकुल में हुआ था। स० १९३६ और १९४४ में प्रथम बनावपुर मिडिल और नॉर्मल परीक्षा पास करने के पश्चात् आप अपने कर्म के तहसीली स्कूल में अध्यापक और तदनन्तर कानूनगो रहे। कानूनगो पद से पेंशन लेकर आप फारो के हिन्दू विश्वविद्यालय में अतिरिक्त अध्यापक हुए। कविता के क्षेत्र में उपाध्यायजी का भासा बहुत ऊँचा है। भक्तान्त छन्द में लिखा हुआ भासा 'प्रियप्रवास' महाकाव्य, जिससे इस पुस्तक में 'प्रातःकाल घणन' लिया गया है, आधुनिक युग का एक अत्यन्त सुन्दर काव्य-ग्रन्थ है। इसमें मयूर व्यञ्जना के साथ सस्कृत गर्भित खड़ी बोली में गोप गोपिकाओं, यज्ञोदा और राधा-कृष्ण के प्रेम का अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन है। उपाध्यायजी ने बोलचाल की भाषा में बड़ी सुदीर्घा उक्तिर्या कही है, जिनमें यत्र तत्र बहाराता और मुहावरों का बहुत उपयुक्त प्रयोग हुआ है। हरिभोधजी की यह विशेषता है कि आप सरल-मे सरल या कठिन से कठिन दोनों प्रकार की पद्य रचना सफलतापूर्वक कर सकते हैं। आपकी रचनाओं में 'प्रियप्रवास', 'सुभते चौपदे', 'बाग्ये चौपदे', 'बोन्चाल' और 'रसकलस' उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। 'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास' विषय पर पटना विश्वविद्यालय में दिये हुए आपके मननीय व्याख्यान गत वर्ष बृहद् ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हुए हैं।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त—

गुप्तजी का जन्म वि० स० १२४३ में झाँसी जिले के चिरगाँव कस्बे में बाबू रामचरण गुप्त (अप्रजाल वैश्य) के यहाँ हुआ था। ये आचार्य महावीर प्रसादजी द्विवेदी के शिष्य और अनुयायी हैं। द्विवेदीजी की भाँति

रचनाओं में भी व्याकरण सवधी त्रुटियों नहीं रहतीं। द्विवेदीजी के सम्पादन काल में इनकी कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होती रहती थीं। इनके 'जय-द्रथ वध' काव्य में खड़ी बोली का अच्छा सौष्टव देखा पड़ता है, किन्तु 'भारत-भारती' पुस्तक इनकी सर्वप्रिय रचना हुई है। इस पुस्तक में गुप्तजी ने स्वच्छ और परिष्कृत खड़ी बोली में भारत की अतीत, वर्तमान और भावी दशा का वर्णन लिखा है। गुप्तजी की कविताएँ देशप्रेम से ओतप्रोत हैं, अतः आप इस युग के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। आपके काव्यों ने नवयुवकों में राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ हिन्दी कविता के लिए प्रेम उत्पन्न किया है। आपने खड़ी बोली में उत्कृष्ट कविता रचकर लोगों के इस प्रारम्भिक विचार को निर्मूल सिद्ध कर दिया कि कविता के लिए खड़ी बोली उपयुक्त नहीं हो सकती। हिन्दी-काव्य-जगत् में आपका नाम जितना प्रसिद्ध हुआ, उतना समदत्त और किसी कवि का नहीं। वि० स० १९८८ में प्रकाशित 'साकेत' महाकाव्य आपकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। अपने कव्य में ही आपने 'साहित्य प्रेस' खोला है। साहित्य सेवा ही आपके जीवन का व्यवसाय है। आपकी मौलिक रचनाओं में 'भारत भारती', 'जयद्रथ वध', 'साकेत', 'यशोधरा', 'हिन्दू', 'पंचमटी', 'गुरुकुल', 'शकुन्तला' ('शकुन्तला की प्रिया' इसी से उद्धृत है), 'पञ्च प्रवध' ('मातृभूमि' उद्धृत है), 'क्षकार' ('क्षकार' और 'यात्री' उद्धृत है) पञ्च 'त्रिपथगा' और अनुवादों में 'मेघनाद वध', 'विरहिणी व्रजादा', 'वीरारत्ना', 'पलासी का युद्ध' और 'रवाइयात उमर गय्याम' उल्लेखनीय हैं।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी—

त्रिपाठीजी का जन्म वि० स० १०४६ में युक्त प्रान्त के जोनपुर जिले के कोहरीपुर गाँव में हुआ था। आपने भारत में दूर दूर तक यात्रा कर अपने काव्यों में भूगर्ग, कादमीर, मेतुवध रामेश्वर आदि देशों और स्थानों का सुन्दर चित्रण किया है। 'कविता-कौमुदी' के दो भागों में आपने और आधुनिक काल के प्रमुख हिन्दी-कवियों का परिचय पूर्ण

कविता समग्र प्रकाशित किया है। आपका ग्राम गीता का वृहत् समग्र भी एक अनूठी वस्तु है। गङ्गा घौली के कवियों मंत्रिपाठानी का सम्माननीय स्थान है। आपकी कविता सरस, सुधाध, मनोहारिणी और उल्लेख भाग से भोतप्रोत होती है। भाषा सस्फुटमया होने पर भी जोरगर और परिष्कृत है। 'पथिक' (जिसका 'प्रकृति वर्णन' एक उद्धरण है), 'मिलन' और 'स्वप्न' आपका मुख्य ग्रन्थ है। इनके सिवा 'कविता मौमुदी' (६ भाग), 'स्वप्न के चित्र', 'मानमी' आदि भी आपकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'कहाँ' और 'जागरण' कविताएँ क्रमशः 'माधुरी' और 'द्विवेश अभिनदन ग्रन्थ' से उद्धृत हैं।

बानू सियारामशरण गुप्त—

आपका जन्म वि० स० १९५२ में हुआ था। आप कविवर श्रीमैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। अपने ज्येष्ठ भ्राता की भाँति आपने भी कवि हृदय पाया है। अपनी काव्य रचनाओं में आपने सामाजिक कुरीतियों पर हृदय में चुभनेवाली चुटकियाँ ली हैं। मैथिलीशरणजी की तरह इनकी भाषा भी सस्फुटमया, सरल एवं सुगंध स्वडी बोली है। इनकी कविता करण रस प्रधान होती है। समय की पुकार को इनकी लेखनी ने जनता तक यही सफलता से पहुँचाया है। आपकी रचनाओं में 'अनाथ', 'मौर्य विजय', 'दूर्वादल', 'विपाद', 'पाथेय' और 'आर्द्रा' (जिसका 'एक फूल की चाह' एक अंश है) उल्लेखनीय हैं। इधर कुछ समय से आप नाटक, उपन्यास और कहानियाँ भी लिखते हैं, जिनमें 'पुण्यपर्व', 'अन्तिम आकांक्षा', 'गोद' और 'मानुषी' मुख्य हैं।

ठाकुर गोपालशरणसिंह—

ठाकुर साहब का जन्म वि० स० १९४८ में हुआ था। आप सेंगर वंशी क्षत्रिय और रीवाँ राज्य (मध्यभारत) में (नह गडी के) प्रथम श्रेणी के सरदार हैं। आपकी स्कूली शिक्षा मैट्रिक तक हुई। तत्पश्चात् आपने व्यापार से ही ज्ञान-वधन किया है। बचपन से ही आपको

कविताप्रेम रहा है। बीस वर्ष की आयु में आपकी कान्य रचना का आरम्भ हुआ। पहले आप ब्रजभाषा में लिखते थे, पर पीछे से लड़ी बोली में कविता करने लगे। आपकी कविताएँ प्रायः 'सरस्वती' में छपती रही हैं। आपकी स्फुट कविताओं का एक सुन्दर संग्रह 'माधुर्या' नाम से प्रकाशित हुआ है, इसी से इस पुस्तक की कविताएँ ली गई हैं। डाक्टर साहय की एक विशेषता यह है कि आप पुराने कवियों के जैसे भावों को लड़ी बोली के सँघे में ढालकर उन्हें कहीं सुन्दर बना देते हैं। आपकी कविता सरल, मनोहर, प्रसाहमयी और प्रसादगुण सम्पन्न होती है। लड़ी बोली में घासदारी रचना में आप सफल हुए हैं।

श्रीयुत वियोगी हरि—

[गद्य रत्न-माला, पृ० ४०१ में आपका परिचय दिया गया है।] हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से आपको 'वीरसतसई' पर, जिसमें आपने ब्रजभाषा में भारत के प्रसिद्ध वीरा का सुन्दर प्रकाशितार्थ लिखी है, (१२००) २० का मंगलाप्रसाद पारितापिक मिला है। वियोगी हरिजी ब्रजपति, ब्रजभाषा और ब्रजभूमि के अनन्य उपासक हैं। आपने प्राचीन कृष्णभक्त कवियों की शैली पर यत्नसे रसीले पदों की रचना की, जिन्हें पढ़कर रसिक भक्त 'बलिहारी हैं' कहे बिना नहीं रहते। इस रूप में जमाने में ऐसी अनन्य प्रेमधारा बहुत कम लोगों में बहती है। 'वीरवत्सी' और 'वीरवाहु' क्रमशः 'वीरसतसई' और 'सुधा' से लिखे गए हैं।

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त—

प० सुमित्रानन्दन पन्त पहाड़ी ब्राह्मण हैं। इनका जन्म वि० स० १९५८ में अटमोडे में हुआ था। इनके पिता अत्यन्त धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। पिता में जो सहृदय भावना धर्मनिष्ठा के रूप में विद्यमान थी, वही पुत्र में कविरत्न-रूप में प्रकट हुई। पन्तजी ने एफ्० ए० तक शिक्षा पाई, पर डॉलेज की अप्राकृतिक शिक्षा रुचिकर न होने से उनके बन्धन से मुक्त होकर आपने प्रकृति की गोद को ही अपना शिक्षणालय बनाया। कविता-

क्षेत्र में आपने नये ढंग का पौधा लगाया है, इसी से आप हिन्दी-कविता के नवीन युग प्रवर्तक माने जाते हैं। आपकी अपनी स्वतन्त्र शैली है, जिसमें भाषा सौष्ठव, प्रवाह और मधुरता देख पड़ती है। इनकी भाषा संस्कृतमय मधी बोली है। अँगरेजी साहित्य के अनुशीलन के फलस्वरूप आपकी रचनाओं में अँगरेजी भावों का रहना स्वाभाविक है, पर वे शन-शन हिन्दी के अनुरूप हाते जाते हैं। आपके ग्रन्थों में 'उच्छ्वास,' 'वीणा,' 'पल्लव,' 'ग्रन्थि,' 'गुजन' और 'ज्योत्स्ना' उल्लेखनीय हैं। 'बादल' आपके 'पल्लव' का एक अंश है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान—

श्रीमती सुभद्राकुमारी का जन्म वि० स० १९६१ म प्रयाग के एक क्षत्रिय कुल म हुआ था। इनकी शिक्षा प्रयाग के प्रॉस्पेक्ट गर्ल्स हाइ-स्कूल में हुई। स० १९७६ में खडवा के टाटुर लक्ष्मणसिंह चौहान, बी० ए०, एल्. एल्. बी० के साथ इनका विवाह हुआ और अब उनका साथ जबलपुर में रहती हैं। बाल्यकाल से ही इन्हें कविता की धुन रही है। इनके पिताजी की कविता और गान की ओर विशेष रूचि थी। उनके भजनों को सुनकर इनके मन में कविता की लहरें उठा करतीं। आजकल हिन्दी की कवियों में इनका सर्वोच्च स्थान है। घाट्य जापन और दश प्रेम इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। इनकी कविता सुयोध, स्वाभाविक और भावमयी होती है। इनकी भाषा सीधी सादी मधी बोली है, जिसमें कहीं-कहीं उर्दू शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। सुभद्राजी की सजीव वर्णन शैली से पाठक के सामने एक सुन्दर चित्र खिंच जाता है। इनकी कविता शक्ति की यह एक विशेषता है कि किसी के कहने से या दी हुई समस्याओं पर सुन्दर कविता नहीं लिखी जाती, किन्तु हृदय में भावों के उमड़ने पर ही काव्य रचना होती है कि यही इनके पद्यों के हृदयग्राही होने का रहस्य है। इनका स्वभाव भावुक और यशों का सा सरल है, यही भावुकता और सरलता इनकी रचनाओं में ज्यों-की-त्यों झलकती है। इनकी काव्य-रचना

में शब्दाङ्गपर अथवा कवित्व का शास्त्रीय पाण्डित्य नहीं देख पड़ता, किन्तु इनके स्थान में हृदय से निकली हुई सीधी और सच्ची यात है, जो पाठक के हृदय में चुभ जाती है। इनके 'विगरे मोती' नामक कहानी-संग्रह और 'मुकुट' शीर्षक कविता संग्रह (इसमें तथा 'रवी रवि कौमुदी' से इस पुस्तक की कविताएँ ली गई हैं) दोनों पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने, निम्न निम्न अवसरों पर, सर्वश्रेष्ठ महिला लेखिका का दिया जानेवाला ५००) रु० का सेकसरिया पारितोषिक प्रदान किया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा, एम्० ए०—

आपका जन्म वि० स० १९६४ में फर्रुखाबाद में यादू गोविन्दप्रसाद वर्मा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० के यहाँ हुआ था। इनके पिताजी की स्त्री शिक्षा की ओर विशेष रचि थी, जिसके फलस्वरूप महादेवीजी ने प्रयाग-विश्वविद्यालय की एम्० ए० परीक्षा पास की। शिक्षा के साथ-साथ इनमें कविता की ओर झुकाव बढ़ता गया और इनकी काव्य-रचना में गम्भीरता और स्थायित्व भाता गया। नई धारा के कवियों में इनका नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इनकी मधुर एवं सगीतमय कविताएँ एकदम भावुक जनों के हृदय में स्थान कर लेती हैं। आपका मत है कि कविता हृदय की एक 'फीलिंग' है, जो पॉलिश करने से निर्जाव हो जाती है, इसीलिए आप एक बार लिखी हुई कविता को उ्यों का र्यों रहने देता है। 'नीहार' (इस पुस्तक की 'उस पार' कविता इसका एक अंश है), 'रदिम' और 'नोरना' आपके मुख्य कविता ग्रन्थ हैं। अप्रैल सन् १९३५ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आपको 'तिरजा' पर सेकसरिया पारितोषिक मिला है।

वाधू राय कृष्णदास—

[आपके परिचय के लिए देखो गद्य-रत्न माला, पृ० ४९०-९१।]
आपका 'भावुक' शीर्षक पद्य-संग्रह उल्लेखनीय है। इस पुस्तक में आपकी कविताएँ प्रमश 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ,' 'माधुरी' और 'सुधा' से ली गई हैं।

बाबू जयशंकर 'प्रसाद'—

आपका जन्म वि० स० १९२६ म काशी के एक प्रसिद्ध वैश्य बुरल में हुआ था । आपन घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, अँगरेजी और फारसी की शिक्षा पाई । बचपन से ही आपको कविता की रुचि रही है । आपने अतुल्य कविता और रहस्यवाद सम्बन्धी का य रचना का आरम्भ किया । अपनी सपत्नीमुग्धी प्रतिभा के कारण आपको कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह नाटक, काव्य, उपन्यास, कहानी सबके लिखने में सफलता प्राप्त हुई है । भावुकता और भावों की मौलिकता प्रसादजी की रचनाओं के विशेष गुण है । इनका शैली में बंगला भाषा की, जिसका आपने अच्छा अध्ययन किया है, छाप देस पडती है । आपन प्रथमापा और खडी बोली दोनों में कविताएँ की है । आप भावोपयोगी एवं संस्कृत गर्भित भाषा लिखते हैं । आपके कविता ग्रंथों में 'मन्तर', 'कान कुसुम', 'शरणा', 'आँसू' और 'चित्राधार' मुख्य हैं । 'भारत महिमा' आपन 'स्कन्दगुप्त चित्रमादित्य' नाटक से उद्धृत है । [प्रसादजी के विशेष परिचय क लिए दखा 'गद्य-रत्न माला,' पृ० ४८३-४४] ।

'नीति-मञ्जरी' पर टिप्पणी

पृ० २२ अहोणा-नहीं होनेवाला, अयोग्य । एह-यह । प्रकृत-स्वभाव । गल-दुष्ट, शत्रु । रामण-रावण । सोवनो-सुवर्ण का । सौधियाँ-सन्धि करने से । वचियाँ-(वक्ता) वच सक्ता है ? यौसूँ-इनसे । चीसरे-भूलता है । प्रक-बोकीशस का कथन है । रासेस नूँ-पूर्णचक्र को । ऊचरे-घोलत है । वेण-उचन । क्रिपाक-बुद्ध विशेष । गार्धो-गाने से । वातो-वात हा वात में । विसागणा-उत्पन्न करता । सणो-मित्र जनों से । हासे-हेसा में । टोयण-दुर्ग ।

पृ० २३ पाडण-गिराने को । आद्विज-यही । वक मूनि-हे बगुले मुनि ! प्रत-कृष, कर्म । ऊपडे-प्रकृत होत है । धरै-आगे । वाय-वायु । भीर-दरपोकके लिये ।

में शब्दाडम्बर अथवा कवित्व का शास्त्रीय पाण्डित्य नहीं देय पड़ता, किन्तु इनके स्थान में हृदय से निकली हुई सीधी और सच्ची यात है, जो पाठक के हृदय में चुभ जाती है। इनके 'विंगरे मोती' नामक कहानी-संग्रह और 'मुकुल' शीर्षक कविता संग्रह (इससे तथा 'खी कवि कौमुदी' से इस पुस्तक की कविताएँ ली गई हैं) दोनों पर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने, भिन्न भिन्न अवसरों पर, सर्वश्रेष्ठ महिला लेखिका को दिया जानेवाला ५००) रु० का सेकसरिया पारितोषिक प्रदान किया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा, एम्० ए०—

आपका जन्म वि० स० १९६४ में फर्रुखाबाद में बाबू गोविन्दप्रसाद वर्मा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० के यहाँ हुआ था। इनके पिताजी की स्त्री शिक्षा की ओर विशेष रचि थी, जिसके फलस्वरूप महादेवीजी ने प्रयाग-त्रिभुविद्यालय की एम्० ए० परीक्षा पास की। शिक्षा के साथ-साथ इनमें कविता की ओर झुकाव बढ़ता गया और इनकी काव्य-रचना में गम्भीरता और स्थायित्व आता गया। नई धारा के कवियों में इनका नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इनकी मधुर एवं सगीतमय कविताएँ एकदम भावुक जनों के हृदय में स्थान कर लेती हैं। आपका मत है कि कविता हृदय की एक 'फीलिंग' है, जो पॉलिश करने से निर्जीव हो जाती है, इसीलिए आप एक बार लिखी हुई कविता को ज्यों-का त्यों रहने देती हैं। 'नीहार' (इस पुस्तक की 'उस पार' कविता इसका एक अंश है), 'रश्मि' और 'नीरजा' आपके मुख्य कविता ग्रन्थ हैं। अप्रैल सन् १९३५ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आपको 'नीरजा' पर सेकसरिया पारितोषिक मिला है।

बाबू राय कृष्णदास—

[आपके परिचय के लिए देखो गद्य-रत्न माला, पृ० ४९०-९१।]
आपका 'भावुक'-शीर्षक पद्य-संग्रह उल्लेखनीय है। इस पुस्तक में आपकी कविताएँ प्रमश 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ,' 'माधुरी' और 'सुधा' से ली गई हैं।

बाबू जयशंकर 'प्रसाद'—

आपका जन्म वि० स० १९४६ में काशी के एक प्रसिद्ध वैद्य कुल में हुआ था। आपने घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, अंगरजी और फारसी की शिक्षा पाई। बचपन से ही आपको कविता की रचि रही है। आपने अतुलान्त कविता और रहस्यवाद सम्बन्धी काव्य रचना का आरम्भ किया। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण आपको कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह गायक, काव्य, उपन्यास, कहानी सबके लिये में सफलता प्राप्त हुई है। भावुकता और भावों की मौलिकता प्रसादजी की रचनाओं के विशेष गुण है। इनकी शैली में बँगला भाषा की, जिसका आपने अच्छा अध्ययन किया है, छाप दम पड़ती है। आपने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविताएँ की हैं। आप भावोपयोगी एव संस्कृत गर्भित भाषा लिखते हैं। आपके कविता ग्रन्थों में 'मन्तर', 'कानन कुसुम', 'क्षरना', 'ऑसू' और 'चित्राधार' मुख्य हैं। 'भारत महिमा' आपके 'स्कन्दगुप्त विग्रमादित्य' नाटक से उद्धृत है। [प्रसादजी के विशेष परिचय के लिए देखो 'गद्य-रत्न माला,' पृ० ४८३ ८४]।

'नीति-मञ्जरी' पर टिप्पणी

पृ० २२ अहोणो-नहीं होनेवाला, अयोग्य। पह-यह। प्रकृत-म्यभाव। खळ-दुष्ट, शत्रु। रामण-रावण। सोवतो-सुवर्ण का। सांधियों-मन्धि करन से। वचियौ-(क्या) वच सक्ता है? योंसूँ-इनसे। वीसरे-मूलता है। त्रक-बोंकीदास का कथन है। राकेस नूँ-पूर्णचन्द्र को। ऊचरै-बोलते हैं। वैण-वचन। किपाक-शूक्ष विशेष। ग्याघाँ-पाने से। घातों-घात ही बात में। विसावगा-उत्पन्न करता। सैणों-मित्र जना से। हासे-हँसी म। दोयण-दुःखन।

पृ० २३ पाडण-गिराने को। आहिज-यही। यक मूनि-हे बगुल मुनि। वत्त-कुर्य, कम। ऊघडे-प्रकट होते हैं। धक्-आगे। घाय-जायु। भीर-डरपोक के लिये।

संशोधन

शृष्ट पक्ति	मुद्रित	उचित	शृष्ट पक्ति	मुद्रित	उचित
२	११ गजि रहे	गरजि भरे	६५	१४ ही	दी
२	२० पड	पडे	६८	८ चितिन	चितन
३	५ गावति	नौवति	७६	१२ देगे	देखे
६	५ छाडावहिं	छोडावहिं	७६	१९ जानि	जाति
७	५ करी	कग	७८	९ से	ते
१३	२१ अति फिरि	अलि विरि	७९	१७ लाइ	लाई
१४	५ जल पाइ	जलपाइ	८२	६ नहिं	नाहि
१५	९ का	को	८२	१० अनमोल	अनमेल
१६	१७ ये	में	८८	३ परदर गगकै	पुरदर गग
२२	६ दुज	दुख	९१	३४ जाइ नाइ	जोइ होइ
२२	१८ दायण	दोयण	९५	२ हेर	हेरै
२२	१९ भूसे	भूसे	९५	४ हेर	हेरै
२४	११ मरल	गरल	९८	७ सुभ	सुभग
२४	१६ राति	राती	११५	७ हुआ	रहा
२६	१४ अकरन	अकारन	११७	१५ जाति	जाहि
३२	१९ अमि	अति	११८	७ याटिकानि	याटिकनि
३६	२१ ककि	कंकि	१२१	१७ सनयासिनि	सन्यासिनि
३७	१४ दलित	ललित	१२५	३ बोलियाँ	बैलियाँ
४२	४ घरी	घरी	१२९	६ वरत	वरते
५८	९ आपने	भापने	१३९	१५ विविधि	विविध
५८	११ कृपानिधि	कृपाणिधि	१४१	१९ शाति	शात
६०	६ ह	है	१५४	९ चम्क	चम्पक
६१	६ मुति	मुति	१६०	७ खड्ग	खड्ग
६२	८ कतितट	कटितट	१७५	१२ खड	खडू
८२	१३ पहले	परसे			

